

श्रावकधर्म-प्रकाश

लेखक

मुनि श्री धनराज (प्रथम)

प्रकाशक :

लूणकरण लामचन्द

तिलोत्तमचन्द सोहनलाल पुगलिया

प्राप्ति स्थान

(१) श्री जैन श्वेताम्बर तैरापन्थी सभा,
पो० श्री डूंगरगढ (चूह)

(२) पुगलिया ग्रादर्स,
पो० श्री डूंगरगढ (चूह)

(३) सोहनलाल हनुमानमल,
न० ४६, स्ट्रॉण्ड रोड, कलकत्ता ७

(४) सोहनलाल फूसराज,
पो० धुबडी (आसाम)

(५) नथमल घमन्दीराम
पो० वडपेटा रोड,
जि० कामरूप (आसाम)

प्रथम संस्करण २२००

वि० सं० २०१४

मूल्य १)२५

मुद्रक

रेफिड आर्ट प्रेस,

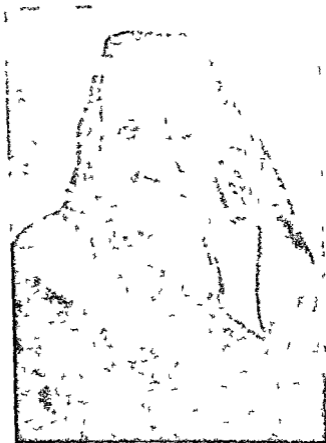
३१ बंगला स्ट्रीट

कलकत्ता ७

समर्पण

आदराभाषक समाज का निर्माण करा कि टिप जो नित्य-नए
उपक्रम उपरिष्ठ कर रहे हैं—उन जैन शताब्दर सेरापथ
कि नपमाधिशास्ता आचार्य की मुग्गी
कि परण कमलो में

यह थावकधर्म प्रकाश



सर्गोल शक्तिशाली प्रेमी बांध

श्राविका "प्रेमी बाई"—एक परिचय

धर्म के मूलाधार चार स्तंभों में श्रावक-श्राविकाओं की महत्ता कम नहीं है। धर्म शासनोद्धान को उन्होंने त्याग, तप, वैराग्य एवं व्रत कृत्य से परिचित कर सदा पल्लवित-सुषुप्त रखा है। जन साधारण के लिए ऐसे दृष्टिकोणों का शक्ति प्रेरणा का एक अमूल्य स्रोत बन जाता है।

श्राविका प्रेमीबाई का जन्म वि० सं० १९५६ में श्री हूणरगढ़ के श्रावक परिवार में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री जेठमलजी था। ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही आपका विवाह पुगलिया परिवार के श्री मोमराजजी पुगलिया के साथ सम्पन्न हुआ। आपने अपने जीवन में निष्कलता, सादगी व धर्मानुराग को विलसित किया।

सं० १९८६ में आचार्य श्री कालू गणिराज के यहाँ पञ्चपण पर आपने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री भूमरमल को आश्राय श्री के चरणों में भेंट कर दिया, जो आज भी शासन सेवा में रत है। धर्म शासन को उनकी यह भेंट अप्रतिम बड़ी जा सकती है। सं० २००१ में आपने अपने जीवन की श्रावक के चारह व्रतों की अंगीकार कर संयम साधना की ओर द्रुतगति से अग्रसर किया।

सं० २००७ में पति विधोग के कराल आघात को सहन कर अप्रुव मानसिक दृष्टता का परिचय देते हुए आपने अपने जीवन को त्याग, तप व साधना के साधे में डाल दिया। प्रत्येक चातुर्मास की

तपस्या में आपका स्थान सर्वोपरि रहा। आपकी वृत्तिपथ तपस्याए इस प्रकार है — २९, ३९, ४९, ५९ एष १ से १६ तक की लक्ष्मी, १२ वय तक लगातार एकान्तर व अनेक थोकड़े, उपवास, वेला, पौषष आदि है।

अनेकों वर्षों की निरन्तर तपस्याओं व वाधवय के कारण शरीर क्षीण हो गया था। चलन फिरने की क्षक्ति काफी कम हो गई थी। किन्तु उनका मनोबल अगम्य था। आपकी तीव्र इच्छा थी मुनि श्री भूमरमलजी के दशन करने की जो कि उनके संसार पक्षीय पुत्र हैं। उनकी भावना को देखकर आचार्य घर से मुनि श्री को दशनार्थ भेजने की अर्ज की गई। आचार्य देव ने उनकी भावना से मूक होकर तत्काल मुनि श्री धनराजजी (प्रथम) को श्री झूंगरगढ़ जाकर उन्हें दशन देने का हुक्म फरमाया। उनका संसार पक्षीय पुत्र मुनिश्री भूमरमलजी जो उनके साथ ही थे, का दर्शन मुलभ करा दिया।

मुनि श्री ने अपनी माता की अन्तिम इच्छा सेवा, दशन एवं सथारा देकर पुण की एवं उनकी नैया भवसागर से पार लगा दी।

उनके जीवन की सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि मृत्यु के पाच दिन पूर्व उन्होंने अपनी मृत्यु के काल का आभास पाकर सबको बता दिया था कि उनका आयुष्य उसना ही है मुनि श्री के आदेशानुसार यह बात नोट कर ली गई। दो दिन पश्चात फाल्गुन सुदी ७ को दिन के १२० बजे उनकी स्वेच्छा से सागार त्रिबिहार सथारा बचल वाया। उन्होंने पुन मृत्युकाल का आभास पाते हुए कहा कि अब उनका

आयुष्य सिर्फ तीन दिनों का है। उसी दिन शाम को ६ ३० बजे मुनि श्री भूमरमलजी ने उन्हें यावज्जीवन त्रिविहार सधारा करा दिया। फाल्गुन सुदी ६ को दिन के १२ ४५ बजे चौबिहार सधारा करवाया व उसी रोज शाम को ७ ३१ बजे आपने मुक्ति लाभ किया। इस अवसर पर उनके पाचों पुत्र (मुनिश्री भूमरमलजी सहित) पुत्रो, पौत्र, दोहित्र—दोहित्रियाँ आदि सभी उपस्थित थे।

मुनि श्री धनराजजी व साधु-साध्वियों का सधारे में अपूर्व योग रहा जिससे उन्हें अपूर्व आत्मबल मिला।

मुनि श्री धनराजजी ने आत्म त्याग की इस बेला का वयस्व दो गीतों में अतीव सुन्दर रूप से मुखरित किया है। दोनों गीत इस पुस्तक में प्रकाशित हैं।



आधिक्यन

भगवान् महावीर ने श्रावकों को धर्म के सहायक तथा साधुओं के माता पिता के तुल्य कहा है। वे हर वक्त साधुओं के हितचिन्तन में लगे रहते हैं एवं अपनी विविध सेवाओं द्वारा उन्हें सयम साधना में सहायता देते रहते हैं।

जैन शास्त्रों में साधुओं की तरह श्रावकों की भी अच्छी खासी महिमा गाई गई है। उपासकदशाङ्ग-सूत्र तो केवल श्रावकों के आदर्श-जीवन का दिग्दर्शन कराने के लिये ही लिखा गया है—ऐसा लगता है। वास्तव में साधु श्रावक का जोड़ा है। धर्मशासन का गौरव बढ़ाने में श्रावकों की भी साधुओं के समान ही परमावश्यकता है।

लेकिन श्रावक नाम के न होकर श्रावकोचित आदर्शगुणों से सम्पन्न होने चाहिये। जैन शास्त्रों में सम्यक्त्व एवं धर्म श्रावकों के आदर्श गुण माने गये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में मुख्यतया सम्यक्त्व मूलक श्रावकों के बाहर धर्मों का विवेचन किया गया है। इसमें पन्द्रह पुञ्ज (अध्याय) हैं।

उनमें क्या है ?

पहले पुञ्ज में 'श्रावक शब्द का अर्थ श्रावक के गुण, श्रावक के भेद सम्यक्त्व की परमावश्यकता एवं अर्हन्तक कामदेव की

धर्मदृढ़ता का वर्णन है। दसरे से तेरहवें पुञ्ज तक बारह पुञ्जों में बारह व्रतों का विवेचन है। प्रत्येक व्रत की व्याख्या, भेद एवं अतिचार प्रश्नोत्तर रूप में अतिसरल भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है और व्रतों से सम्बन्ध रखने वाले अनेक ज्ञातव्य विषय भी तत्स्थानों में लिखे गये हैं। चौदहवें पुञ्ज में श्रावक की बारह पड़िमाएँ व सलेखेना सधारा करने की विधि बतलाई गई है एवं पन्द्रहवें पुञ्ज में श्रावक की दिनचर्या, तीन मनोरथ, चार विश्राम व श्रावकों के प्रकारों का दिग्दर्शन है।

आधारभूत ग्रन्थ

इस पुस्तक की रचना यद्यपि अनेक ग्रन्थों के सहारे से हुई है तथापि उपासकदशांग सूत्र हरिभद्रीय आवश्यक एवं बारह व्रतों की चौपई को^१ मुख्य आधार रखा गया है। सामायिक सूत्र^२ तथा अहिंसा अणुव्रत वादि पुस्तकें^३ भी इस सङ्कलन में काफी सहायक रही हैं।

यह क्यों ?

मैं साधुधर्म के विषय में चारित्रप्रकाश लिख रहा था। एक श्रावकजी ने उसे देख कर कहा—महाराज ! श्रावकधर्म के विषय

नोट—१ श्री मिश्र स्वामी कृत

२ उपाध्याय श्री अमरचंदजी कृत

३ स्वा० पू० श्री जवाहिरलालजी के व्याख्यानाँ के आधार से संकलित

में भी आप कुछ लिखिए, जिससे भाषकवर्ग विशेष लाभ उठा सके। भाषकजी की प्राधना ने हृदय में स्थान किया और चारित्रप्रकाश को सम्पन्न करके भाषकधर्मप्रकाश लिखने लगा एवं मद्गुरुदेव की कृपा से सफलता मिली।

यद्यपि इस विषय को प्रकाशित करने वाले अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं फिर भी मैं आशा करता हूँ कि सीधी साधी भाषा में लिखी हुई यह छोटी सी पुस्तक जनसाधारण के आदर्श भाषक बनने में विशेष प्रेरक बनेगी और मेरा प्रयास सफल होगा, अस्तु।

वि० सं० २०२३, कार्तिक गुप्तला }
 नवमी, सोमवार, षालोतरा } धनमुनि (प्रथम)
 (राजस्थान)

भूमिका

बालोतरा नगर के लिये यह परम सौभाग्य ही कहा जा सकता है, जहाँ गत छ वर्ष बाद ही परम श्रद्धास्पद प्रात स्मरणीय आचार्य प्रवर की अनुपम कृपा से तेरापथ शासन के सुप्रसिद्ध विद्वान एव सजग माधना के धनी मुनि श्री धनराजजी स्वामी (प्रथम) के द्वितीय चातुर्मास का इस वर्ष (सवत् २०२३) मुखवसर मिला। गत चातुर्मास की तरह ही समूचे चातुर्मास में एक अपूर्व आध्यात्मिक सहास व उत्साह बना रहा। जनहिताय विविध प्रवृत्तियों के उपरांत मुनि श्री के स्वाध्याय का क्रम भी सतत चलता रहा व उसके फलस्वरूप इस चातुर्मास में मुनि श्री ने जैन साधुओं की सयम माधना के विशिष्ट एव विशद आचार प्रकार, नियम उपनियम, आचार विचार के सवध में ह्यास्त्रीय एव परम्परा के विद्यमान आधारों का गहन सकलन कर एक सुव्यवस्थित आचार संहिता के रूप में ' चारित्र प्रकाश ' ग्रंथ की रचना सपन्न की और उसके पश्चात सरल सुबोध व सुगम भाषा में श्रावक जीवन से सम्बंधित भगवद्वाणी व उत्तरवर्ती आचार्यों द्वारा प्रेरणाजन्य बनाए गये विधि विधान व आधारों का सकलन कर ' श्रावकधर्म प्रकाश " के रूप में दूसरे ग्रंथ की रचना कर पूव पुस्तक के अत्यन्त आवश्यक पूरक के अभाव की पूर्ति की।

"चारित्र प्रकाश" का प्रकाशन इसके पूर्व हो चुका है व प्रस्तुत पुस्तक ' श्रावक धर्म प्रकाश ' को पाठकों के हाथों में सौपने का हमको सात्विक गव है यद्यपि मुनि श्री की लगनशीलता, कार्यशक्ति,

अमशील खोन्नपूर्ण अध्ययन व लोगों के जीवन परिष्कार की अपूर्ण भावना ही इसमें मुख्य कारण है और इस विषय में मुनिश्री का आभार प्रकट करने के लिये जितने शब्द कहे या लिखे जाय, वे थोड़े ही होंगे। हृदय के भावों की असीमता सीमित शब्दों में बाँधी नहीं जा सकती। यह पुस्तक सरल भाषा में एक स्थान पर उपयोगी तत्त्व एकत्रित किये जाने के कारण जन जन के जीवन शुद्धि का क्रम स्थिर कर उसके मानस को जागृत करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रस्तुत पुस्तक को धारने व लिपिबद्ध करने में स्थानीय सभा के कार्यकर्ता श्री सोहनराज सालेचा, श्री सोहनराज फोगटिया, श्री मोठालाल ओसवाल आदि ने जो समय व शक्ति दी है उसके लिये वे तो धन्यवाद के पात्र हैं ही पर मैं श्री लूणकरणजी, लाभचंदजी तिलोकचंदजी मोहनलालजी पुगलिया हूँगरगढ़ निवासी की भी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता जिन्होंने अपने पूज्यमातु श्री के निवृत्त होने पर स्मृति रूप में इस पुस्तक के प्रकाशन का संपूर्ण व्यय महन करने की स्वीकृति देकर अपने अर्थ का सदुपयोग किया है व समाज के लिए सासाहित्य के प्रचार का मार्ग प्रशस्त किया है।

मैं पुनः आशा करता हूँ कि प्रस्तुत पुस्तक प्रायक के जीवन को आलोक प्रदान करेगी व अपने आप की सार्थकता सिद्ध करेगी।

दि० १० ४ ६७
चैत्रशुक्ला—१

मोहनरान कोठारी, एडवोकेट
उपाध्यक्ष, श्री जन दल० ते० महासभा
कलकत्ता

प्रश्नोत्तरों की विषय सूची

पहला पुञ्ज (पृष्ठ १ से १२ तक)

- १—श्रावक का अर्थ
- २—श्रावक जन्म से नहीं होता
- ३—श्रावक कैसे हों ?
श्रावक के छह गुण
- ४—चार प्रकार के श्रावक
भाव श्रावक के तीन तथा दो प्रकार
- ५—श्रावक बनने से पहले सम्यक्त्व परमावश्यक
- ६—सम्यक्त्व की प्राप्ति कैसे होती है ?
- ७—अतिक्रम-अतिक्रम अतिचार एवं अनाचार
- ८—सम्यक्त्व के पाँच अतिचारों का स्वरूप
- ९—अन्यतोषियों को बदनाम नमस्कार के छह आगार
- १०—माताजी भर्तृजी आदि को मानना भी कमजोरी
अहंनक तथा कामदेव की धार्मिक दृढ़ता

दूसरा पुञ्ज (पृष्ठ १२ से २१ तक)

- १—व्रतधारी श्रावक
- २—हिंसादि का त्याग करना आवश्यक
- ३—बदाच व्रत टूट जाय तो ?
राजा एवं मन्त्री भी व्रतधारी बने थे।

४—व्रत इच्छानुसार धारे जा सकने है ।

५—वारह व्रत

६—हिंसा अहिंसा का रहस्य

७—अहिंसा अणुव्रत में क्या त्याग होता है ?

सकल्पजा और आरम्भजा हिंसा

८—श्रावक का खान पान आदि क्या हो ?

९—स्यावरजीवा की हिंसा का परिमाण

१०—अहिंसा अणुव्रत के पाँच अतिचार (ध्यानपूर्वक पन्न लायक
वध वध आदि का विवेचन)

११—अहिंसा अणुव्रत के करण योग

तीसरा पुञ्ज (पृष्ठ २१ से २६ तक)

१—दूसरा सत्य-अणुव्रत

२—सत्य का अर्थ व उसके चार रूप

३—असत्य का अर्थ एवं उसके दुर्गुण

४—बड़े मूठ के पाँच भेद क-यालीक आदि

५—दूसरे व्रत के अतिचार सहस्राम्याख्यान आदि

६—सत्यवादी श्रावक के ध्यान देन योग्य बातें

७—इस वेईमानों क जमाने में श्रावक क्या करें ?

चौथा पुञ्ज (पृष्ठ २६ से ४० तक)

१—तीसरा अस्तेय अणुव्रत

२—चार प्रकार की चोरी

३—सम्पचोरी का दिग्दशन

- ४—असम्यचोरी के पाँच भेद
५—चोरी करन के आन्तरिक व बाह्य कारण
६—तीसरे व्रत के पाँच अतिचार (ब्लेक-बूटडोन-बूटमाप एव
मिलावट का निषेध)
७—ब्लेक की कमाई थावक साथ तो ?
८—रिश्वत बड़ी चोरी (रिश्वत का चित्र)
९—रिश्वत का अर्थ एवं अनेक रूप । रिश्वत से सरकार का
नुक्सान, चाणक्य की बाणी ।

१०—रिश्वत देना भी चोरी ।

११—चोटों के लिए पसा लेना देना भी रिश्वत

१२—जेन-गास्त्रानुसार चोरी की गति

पाँचर्षा पृञ्ज (पृष्ठ ४० से ५३ तक)

१—चौथा ब्रह्मचर्य-अणुव्रत

२—ब्रह्मचर्य का अर्थ

३—मैथुन का अर्थ एवं उसके आठ अङ्ग

४—अब्रह्मचर्य सेवन से गारीरिक एव आत्मिक नुक्सान

५—गृहस्थ के लिए स्वप्नारसंशोष व्रत

६—स्वस्त्री के विषय में मर्यादा कसे की जाय ?

७—एक रात में दो बार तथा पाँच तिथियों में भोग निषेध का
रहस्य

८—ब्रह्मचर्य-अणुव्रत के कारण योग

९—देवी नियतचौं व साथ अब्रह्मचर्य-सेवन का प्रसंग

१०—पाँच अतिचारों का घणन-उनमे परविवाह करने का तथा बाजीकरण औपघिसेवन का त्याग ।

११—परस्त्री का विशेष निषेध क्यों ? वेश्या का परित्याग आवश्यक

१२—बालविवाह-वृद्धविवाह का त्याग । पुनर्विवाह के समर्थक कुछ सोचें । पश्चिमी देशों में पुनर्विवाह की अजीब बातें ।

१३—कन्याविक्रय-वरविक्रय श्रावक के लिए अनुचित ।

छठा पुञ्ज (पृष्ठ ५३ से ६२ तक)

१—पाचवीं परिग्रह-परिमाण व्रत

२—परिग्रह का अर्थ एवं पर्यायवाची नाम

३—परिग्रह के दो भेद-बाह्य एव आभ्यन्तर
परिग्रह के नव और चौदह भेद

४—श्रावक इसका त्याग कैसे करे ?

५—बाह्य परिग्रह की त्यागविधि ।

उसमें क्षेत्र वस्तु के भेद—पत्नीपालन तथा मुर्गीपालन का निषेध—दास-दासी एवं स्त्री-पुत्रादि का सकोच—पशु रखने समय अतिचारों आदि का ध्यान आदि विवक्षित हैं ।

६—अतिचारा का घणन

७—इच्छा, तृष्णा, स्पृहा में अन्तर

८—इतनी तृष्णा क्यों ?

९—सग्रहवृत्ति दुःख का कारण ।

सरकार द्वारा प्रजा का शोषण (टिक्सों से)

१०—श्रावक को सतोषी जीवन जोना चाहिए

११—पुराने श्रावकों की व्यापार विधि

सातवाँ पुञ्ज (पृष्ठ ६२ से ६७ तक)

- १—गुणत्रयी का रहस्य
- २—छटा दिशा परिमाण वन
- ३—तीन अथवा दस सिगाण
- ४—दिगाओं का प्रारम्भ दृक्क प्रदेशों से
- ५—दिगाओं की मर्यादा कैसे की जाय ?
- ६—दिगावन के अतिचारों का विवेचन

आठवाँ पुञ्ज (पृष्ठ ६७ से ८६ तक)

- १—सातवाँ उपभोग परिभोग-परिमाण वन
उपभोग परिभोग का त्याग दो प्रकार से
- २—उपभोग-परिभोग का अर्थ
- ३—उपभोग-परिभोग को २६ वस्तुएँ ।
- ४—पाँच अतिचार एवं उसमें सञ्चित त्याग का सङ्ग
- ५—साधिमोजन का निषेध अनेक प्रकार से
- ६—मांस अमर्ष्य । मामाहारी और अमामाहारी जीवों में प्राकृतिक एवं दारोरिक भिन्नता ।
- ७—मांसमक्षण बंधों डाक्टरों द्वारा निषिद्ध
मांसाहार से रोग एवं अधिक मांसमोजी देशों में डाक्टर भी अधिक ।
- ८—अन्न दूध आदि को अपेक्षा मांस में दृष्टि कम ।
मांसमोजी छात्रों की अपेक्षा फल शाकाहारी छात्र परीक्षा में तेज ।

- ६—मास के विषय में जन शास्त्रों का परमान
 १०—जैन तथा अन्य शास्त्रों द्वारा मद्यपान का निषेध ।
 मद्यपान का व्यसन छूटना कठिन ।
 ११—श्रावण की खान पान आदि क्रियाएँ अन्न में
 १२—कम मन्त्रन्धी उन्मोग परिमोग व्रत में इगालकम्मे आदि पदह
 कर्मादान श्रावण के लिए त्यागने योग्य है । विवर्णनाश न
 त्याग सके तो मर्यादा अवश्य ही करनी चाहिए ।

नवों पुञ्ज (पृष्ठ ८७ से ६१ तक)

- १—अनघ दण्ड विरमण व्रत
 २—अनघ दण्ड के चार प्रकार अपध्यान चरित आदि
 प्रमादचरित में पांच प्रकार के प्रमाद का दिग्दर्शन (चार
 विक्थाएँ) ।
 ३—अनघ दण्ड व्रत के आठ आगार
 ४—पांच अतिचार—विशेष ध्यान देने योग्य

दसों पुञ्ज (पृष्ठ ६१ से १०७ तक)

- १—गिम्पाग्रन का रहस्य
 २—सामायिक की अनेक व्युत्पत्तियाँ
 ३—सामायिक करने की विधि प्रतिज्ञा पाठ एवं उसका भाषाण
 तथा एक मूठ का काल
 ४—सामायिक लेने से द्वादश उद्योगसत्यप्र करना चाहिए । उसके
 अन्तगत १८ लाख २४ हजार १२० मिच्छामिदुककड

५—सामायिक में फोट क्मोज आदि पहनने की मागही (पुरुषों के लिए)

६—सामायिक में मुहुपत्ति

७—सामायिक के द्रव्य क्षेत्र काल भाव

८—सामायिक में नवयुवकों की अरुचि क्यों ?

९—सामायिक में मन स्थिर क्यों नहीं रहता ?

१०—सामायिक मात्र आत्म कल्याण के लिए करना चाहिए

११—लड्डू आदि देकर सामायिक करवाई जाय तो ?

१२—सामायिक में रखे गये वस्त्रादि अत्रत में

१३—सामायिक के करण योग

१४—सामायिक के पांच अतिचार एवं अन्तमत्त बत्तोस दोष

ग्यारहवाँ पुञ्ज (पृष्ठ १०७ से ११२ तक)

१—दशवाँ देशावकाशिक व्रत

२—चोदह नियम तथा अस्ति भस्ति-कृपि कम

काल की अपेक्षा से किए गए सभी त्याग दसवें व्रत में

३—दशवें व्रत के पाँच अतिचार

बारहवाँ पुञ्ज (पृष्ठ ११३ से १२२ तक)

१—ग्यारहवाँ पोषधोपवास व्रत

चार प्रकार का पोषध

पोषध का पाठ एवं उसके नियम

२—पोषध में रुई के बिछौने आदि रखने का निषेध

३—महीने में कितने पोषध किए जायें ?

४—पौष के पाँच अतिचार

५—पौष के अठारह दोष

६—क्रोध मोह, भय लोभसे पौष व्रत का मङ्ग

धुलनीपिता सुरादेव एवं चुहसतक की बथाएँ

तेरहवाँ पुञ्ज (पृष्ठ १२२ से १२७ तक)

१—बारहवाँ अतिविसविमाग व्रत-गृद्ध साधु को प्रामुक् एव एषणोय
अशन-पान आदि चौदह प्रकार की वस्तु देने की प्रतिज्ञा
अढाई द्वीप से बाहर ग्यारह व्रतधारी असख्य तियठ्ठ थावक
(नोट में) ।

बारहवें व्रत के लाभ में चित्त वित्त पात्र की शुद्धि आवश्यक

२—भावना माने की विधि

१—दस प्रकार का दान

४—अपने पुत्रादिक का दान दुष्कर

५—बारहवें व्रत के अतिचार

चौदहवाँ पुञ्ज (पृष्ठ १२७ से १३६ तक)

१—थावक की ग्यारह पढिमाएँ

श्रमणभूत प्रतिमा में थावक का सायुवत् रहन-सहन

ग्यारह पढिमाओं की आराधना करने में साढे पाँच बष का
समय

२—सलेखना का अर्थ

३—अन्तिम सलेखना करने की विधि

४—सलेखना के अतिचार

५—श्रायक को व्यवधिज्ञान—आनन्द एव महानतत्र थावक की
सक्षित जीवनी

पन्द्रहवाँ पुद्ग (पृष्ठ १३६ से १४६ तक)

१—थावक की दिनचर्या

२—सागरी संथारा

३—थावक के लिए प्रतिक्रमण करना जरूरी

पाच, छ एव तीन प्रकार क प्रतिक्रमण

४—साधुओं के दर्शनाथ जान समय किए जाने वाले पाँच अभिगम
तथा वन्दना स लाभ

५—साधुसेवा से दम बोला की प्राप्ति

६—थावक के तीन मनोरथ

७—थावक क चार विधाम

८—थावक साधुआ के माता पिता

९—चार प्रकार के थावक-दो तरह से



पहला-पुञ्ज

(१) प्रश्न—श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर—अक्षरों का अर्थ इस प्रकार है—(आ) जो सवज्ञ-भाषित सत्त्व में श्रद्धा रखता हो (ब) सत्पात्रों में दान रूप योज बोता हो तथा (क) कम रूप रजो को दूर करता हो वह श्रावक कहलाता है ।^१ अथवा जो सवज्ञ भगवान् की वाणी को श्रद्धापूर्वक सुनता है उसे श्रावक कहते हैं । श्रमणों—साधुओं की उपासना—सेवा करन से श्रावक को श्रमणोपासक भी कहा गया है ।^२

(२) प्रश्न—क्या श्रावक जन्म से ही होते हैं या पीछे बनना पड़ता है ?

उत्तर—शास्त्रों में समणोपासएजाए अर्थात् वह श्रमणोपासक बना, ऐसा पाठ आया है, अतः श्रावक के योग्य गुण एव व्रत धारण करने से श्रावक बनता है । यद्यपि व्यवहार में श्रावक का बेटा श्रावक कहलाता है, लेकिन वास्तव में वह श्रावक होता नहीं। हो भी कैसे सकता है । जबकि पढे बिना डाक्टर का बेटा डाक्टर नहीं होता मास्टर का बेटा मास्टर नहीं होता एव आज के प्रजातन्त्र में जनमत एव योग्यता प्राप्त किये बिना राष्ट्रपति का बेटा भी राष्ट्रपति नहीं हो सकता ? अस्तु ! श्रावकों को श्रावकोचित गुण धारण चाहिए ।

१—स्या०, ४।४ टोका ।

२—उपासकदशा—दशाश्रुत। एक घ—ओपपातिक—भगवती आदि सूत्रों में ।

(३) प्रश्न—श्रावकों में क्या-क्या गुण होते हैं ?

उत्तर—जन आगमों के अनुसार श्रावक अल्प आरम्भ वाले, अल्प परिग्रह (आसक्ति) वाले, धर्म की भावना रखने वाले धम के पीछे चलने वाले धम की इष्ट मानने वाले, धम का प्रचार करने वाले धम के धम का अवलोकन करने वाले, धम का पालन करने वाले, धम में सदा प्रसन्नचित्त रहन वाले आश्रीविद्या करते समय भी धम की याद रखने वाले, सुशील, सुयती धर्म काय में आनन्द मानने वाले एव साधु सज्जन होते हैं ।

वे जो ब्रह्म, पुण्य-पाप आदि नव तत्त्वों के जानकार होते हैं ।

वे विकट बेला में भी देवों की सहायता नहीं चाहते एव अपन व्रत नियम तथा निर्ग्रन्थ प्रवचन (बीतराग वाणी) में इतने मुद्वृ होने हैं कि देव, अमुर नाग ज्योतिष्क, यक्ष, राक्षस, विन्नर, त्रिपुररुप, गरुड, महोरग एव गन्धर्वादि भी उन्हें सत् श्रद्धा से विचलित नहीं कर सकते ।

वे प्रमुखाणों में कभी शका नहीं करते, अन्य मत की आकाङ्क्षा नहीं करते और धर्म के फलों में सन्देह नहीं करते । उन्हें प्रभु वाणी का रहस्य प्राप्त हो गया है, उसे उन्होंने श्रद्धापूर्वक ग्रहण किया है । शका के स्थलों को गुह्यों से पूछ कर निणय को हृष्य में रमाया है तथा उनके हाड एव हाड को मज्जाएँ धम के रग में रगी हुई हैं ।

वे निर्ग्रन्थ प्रवचन का ही अर्थ (सारभूत) एवं परमार्थ मानते हैं, शैव सांसारिक कार्यों को अनर्थ अर्थात् आत्मा के लिए अहित—

अनृत्याणकारी समझते हैं। उनके घर के दरवाजों की अगलाएँ हमेशा ऊँची रहती हैं अर्थात् घर के दरवाजे खुले रख कर वे साधु साध्वियों की भावना भाते हैं।

चाहे राजा के अन्त पुर में भी चले जाए फिर भी उनके प्रति किसी प्रकार की आशंका एवं अप्रतीति नहीं होती।

वे शौलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत प्रत्याख्यान आदि का सम्यक् प्रकार से पालन करते हुए अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा एवं अमावस्या को पौषघोषवास करके विधि पूवक धम की आराधना करते हैं।

वे श्रमण निग्रन्थों को निर्गोप, प्रातुक् एवं एषणोय आहार-पानी आदि चौदह प्रकार का दान देते हुए एवं ग्रहण किए हुए तप-जप आदि धम ध्यान में आत्मा को लीन बनाये रखते हैं।^१

पहला पुञ्ज

प्रकारान्तर से धावक के छ गुण माने गये हैं^१

(१) धावक व्रतों का भली प्रकार अनुष्ठान करते हैं। व्रतों का अनुष्ठान चार प्रकार से होता है—

(क) विनय और बहुमानपूर्वक व्रतों को सुनना।

(ख) व्रतों के भाग्य, भेद एवं अतिचारा को साङ्गोपाङ्ग यथार्थ रूप से जानना।

१—औपपाठिक, प्रश्न २० तथा मगवती० २।५

१—धमरत्नप्रकरण गाथा ३३

(ग) गुरु के समीप कुछ काल अथवा सदा के लिये व्रतों को अंगीकार करना ।

(घ) ग्रहण किये हुए व्रतों को सम्पक् प्रकार से पालना ।

(२) धावक शीलवान् होते हैं । शील (आचार) छ प्रकार से पाला जाता है—

(क) जहाँ बहुत से शीलवान् बहुश्रुत साधार्मिक लोग एकत्रित हों वहाँ आवागमन रखना ।

(ख) बिना काम दूसरों के घर न जाना ।

(ग) चमकीला भङ्कीला वस्त्र न रखते हुए वेश में सादापन रखना ।

(घ) विकार उत्पन्न करने वाले वचन न बोलना ।

(ङ) बालक्रीडा अर्थात् जुआ आदि कुल्यसनों का त्याग करना ।

(च) मधुर नीति से अर्थात् दातितमय मोठे वचनों से काय निकालना, कठार वचन न बोलना ।

(३) धावक गुणवान् होते हैं—पाँच विशेष गुण धावकों के लिये जरूरी मान गये हैं—

(क) वाचना पृच्छना परिव्रतना अनुप्रेक्षा और धम कथा रूप पाँच प्रकार का स्वाध्याय करना ।

(ख) तप नियम कन्दनादि अनुष्ठानों में तत्पर रहना ।

(ग) विनयवान् होना ।

(घ) दुराग्रह अर्थात् हठ न करना ।

(ङ) जिन वचनों में रुचि रखना ।

(४) श्रावक ऋजु व्यवहारो होते हैं यानि निष्कषट होकर सरलता से व्यवहार करते हैं ।

(५) श्रावक गुरु को सेवा शुश्रूषा करने वाले होते हैं ।

(६) श्रावक प्रवचन अर्थात् शास्त्रों के ज्ञान में प्रवीण होते हैं ।

(४) प्रश्न—श्रावक कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—श्रावक चार प्रकार के मान गये हैं—नाम श्रावक, स्थापना श्रावक, द्रव्य-श्रावक और भाव-श्रावक ।

किसी व्यक्ति का नाम ही श्रावक हो वह नामश्रावक है । श्रावक की मूर्ति एव तत्त्वों स्थापनाश्रावक है । श्रावक के कुल में पैदा होकर श्रावक के गुणों व व्रतों से जो हीन है अथवा निकट भविष्य में जो श्रावक बनने वाला है वह द्रव्यश्रावक है तथा श्रावक के गुणों-व्रतों से सम्पन्न व्यक्ति भावश्रावक है ।

भावश्रावक तीन प्रकार के होते हैं^१ ज्ञानश्रावक व्रतीश्रावक और उत्तरगुणश्रावक ।

(१) शुद्ध सम्यक्त्व धार कर भी जो व्रत बिल्कुल नहीं धार सकते वे श्रीकृष्ण एव श्रेणिकादिवत् दर्शनश्रावक (सम्यग्दर्शी श्रावक) कहलाते हैं । ये चौथे अविरति—सम्यग्दृष्टि गुण स्थान में उठे हैं ।

(२) जो केवल पाँच अणुव्रतों को ग्रहण करते हैं वे श्रावक होते हैं ।

(३) जो पाँच अणुव्रतों तीन गुणव्रतों और धार श्रावक ऐसे श्रावक व्रतों के धारक हैं वे आनन्द-कामदेवादिबन्धु श्रावक कहते

जाते हैं। दूसरे तीसरे प्रकार के श्रावकों में गुणस्थान पाँचवाँ होता है।

निशोच उ० ११ चूर्ण में श्रावकों के दो भेद भी किये हैं—ग्रनी और अग्रनी। ग्रनी अर्थात् बारह व्रतधारी-श्रावक एवं अग्रनी अर्थात् सम्यक्त्वो श्रावक।

(५) प्रश्न—श्रावक बनने वालों को सबसे पहले क्या करना चाहिए ?

उत्तर—सर्वप्रथम उन्हें शुद्ध सम्यक्त्व को प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि सम्यक्त्व के बिना चारित्र-व्रत नहीं होता। यदि व्यवहार से कर लिया जाता है तो द्रव्यव्रत ही होता है भावव्रत नहीं होता।

द्रव्यव्रत और भावव्रत में राई भेद जितना अन्तर माना गया है। जैसे घोंठी पापत्रामा आदि पहनने पर ही उमर की पोशाक लोभा देती है एवं अकों के ऊपर ही विदियों का महत्त्व बढ़ता है वसी प्रकार सम्यक्त्व होने पर ही अणुव्रत, गुणव्रत एवं गिणाव्रत विशेष लाभ देते हैं।

(६) प्रश्न—सम्यक्त्व की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तर—सच्चे देव सच्चे गुरु एवं सच्चे धर्म को अद्वापूर्वक मानने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। सम्यक्त्व धारण करने वाला व्यक्ति प्रतिज्ञा करता है कि मैं अरिहन्त भगवान् को देव मानूँगा शुद्ध पाँच महाव्रतधारी साधु को गुरु मानूँगा एवं अरिहन्त भगवान् के बताए हुए सत्य को धर्म मानूँगा। गुणहीन देव गुरु धर्म को धर्मबुद्धि से वन्दना नमस्कार नहीं करूँगा।

देव-गुरु धर्म को समझन के लिये नव-वशय पडद्रव्य का ज्ञान करना परम आवश्यक है । यह ज्ञान पञ्चीस श्लोक आदि थोकरों को याद करने से सहज रूप में मिल सकता है ।

तात्त्विक ज्ञान होने पर भी सम्यक्त्व प्राप्त के लिये अनन्तानु बन्धि (तोष) क्रोध मान-माया-लोभ को त्यागना बहुत जरूरी है । है । जब तक तोष क्रोधादि हृदय में रहेंगे सम्यक्त्व नहीं मिल सकेगा ।

७ प्रश्न—सम्यक्त्व की रक्षा के लिये धावक को क्या करना चाहिए ?

उत्तर—अतिचारों से बचना चाहिये । अतिचारों का रहस्य इस प्रकार है '—

निषिद्ध काय को करने का विचार करना अतिक्रम है । कार्य-पूर्ति यानि व्रतभंग के लिये साधन जुटाना व्यतिक्रम है । व्रतभंग की पूरी तयारी है किन्तु जब तक व्रतभंग नहीं तब तक अतिचार है अथवा व्रत की अपेक्षा रखते हुये कुछ अंग में व्रत को भंग करना अतिचार है तथा व्रत की अपेक्षा न रखते हुए सकल्पपूर्वक व्रत भंग करना अनाचार है । इस प्रकार अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार-अनाचार — ये चारों व्रत की मर्यादा को भंग करने के प्रकार हैं ।

शास्त्र में जो अतिचारों का वर्णन है, वह व्रतभंग का मध्यम प्रकार है । अतिचार से पूर्ववर्ती अतिक्रम, व्यतिक्रम और उत्तरवर्ती अनाचार भी ग्रहण किये जाते हैं । वे भी धावक के लिये त्याज्य हैं । यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि सकल्पपूर्वक व्रतों को बिना

अपेक्षा किये अतिचारों का सेवन किया जाय तो वह वास्तव में अनाचार सेवन ही है एवं व्रतभंग का कारण है ।

८ प्रश्न—सम्यक्त्व के कितने और कौन कौन से अतिचार हैं ?

उत्तर—पाच अतिचार हैं—१ शङ्का, २ काङ्क्षा ३ विचिकित्सा, ४ परपाखण्ड प्रशंसा, ५ परपाखण्ड सस्त्व ।*

१ अरिहन्त भगवान् क बताए हुए जाव अजीव आदि तत्त्वों में सदेह करना शङ्का है । जैसे—पानी की एक बून्द में असंख्य जीव एवं निगोद के एक सूदम शरीर में अनन्त जीव कैसे समा सकते हैं ? धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य अरूपी—निराकार हैं फिर भी जीव पुद्गल की गति में सहायक कैसे हो सकते हैं ? तथा बनाए बिना जगत् कैसे बन सकता है ? आदि आदि विचार करना ।

(२) बाह्य आडम्बर देख कर अन्य दशनों मतों की अभिलाषा करना काङ्क्षा है ।

(३) युक्ति तथा आगम सगत धर्मक्रिया के फलों में सदेह करना विचिकित्सा है । जैसे—नीरस तप आदि क्रिया का मविष्य में फल मिलेगा या नहीं ? शङ्का तत्त्वों के विषय में होती है और विचिकित्सा क्रियाफल के विषय में होती है । यही दोनों में अन्तर है ।

(४) अन्यमतावलम्बियों की प्रशंसा करना परपाखण्डप्रशंसा है । (जिम्मेदार धावक के मुह से प्रशंसा सुनकर अनक भाले भाले अन्य मत की तरफ आकृष्ट हो जाते हैं ।)

लेते हैं एवं देवों द्वारा घोर कष्ट देने पर भी अपने सच्चे धर्म से विचलित नहीं होते थे। अहन्नक तथा कामदेव की कथाएँ इस प्रकार हैं—

अहन्नक श्रावक' चम्पानगरी में अहन्नक आदि अनेक श्रावक रहते थे। एकदा अहन्नक अनेक व्यापारियों के साथ जहाज में माल भरकर समुद्र के मार्ग से व्यापारार्थ विदेश जा रहा था। जहाज समुद्र के बीच में था उस समय अचानक भीषण तूफान आया, मेघ गजने लगे तथा बिजलियाँ चमकने लगीं। कुछ ही क्षणों पश्चात् वहाँ हाथ में तलवार लिए एक देव पिशाच के रूप में प्रकट होकर कहने लगा—अहन्नक ! या तो अपने धर्म को छोड़ दे अन्यथा इस जहाज को आकाश में ले जाकर समुद्र में पटक दूँगा। देव की बात सुन कर जहाज में बड़े हुए दूसरे लोग घबरा कर इन्द्र वैश्रवण, दुर्गा आदि देवों की विभिन्न प्रकार से मान्यताएँ करने लगे किन्तु अहन्नक बिल्कुल विचलित न हुआ और सागरी सथारा करके धर्म ध्यान में लीन हो गया। देव ने बार-बार धमकियाँ दीं। फिर भी श्रावक अडोल रहा। तब वह अपनी दो अंगुलियों पर जहाज को उठाकर आकाश में बहुत ऊँचा ले गया एवं कहने लगा—छोड़ दे धर्म को धरना अब जहाज को समुद्र में पटकता हूँ।

मरणान्तक कष्ट या लेकिन अहन्नक के हृदय में तनिक भी कमजारी न आई। धर्म में अद्भुत दृढ़ता देख कर देवता प्रसन्न हुआ एवं अपना दिव्य रूप धार कर बोला—श्रावक ! इन्द्र ने तुम्हारे सम्यग् दर्शन का प्रशंसा की थी, मेने परीक्षा करने के लिए तुम्हें

यह कष्ट दिया लेकिन धन्य है तुम्हारी धार्मिक दृढ़ता । वास्तव में तुम प्रणसा के पात्र ही हो । मैं तुम से पुन पुन क्षमायाचना करता हूँ—ऐसे कह कर अहन्नक के चरणों में एक निव्य कुण्डला की जोड़ी रख कर वह देवता अपने स्थान चला गया ।

कामदेव श्रावक—चम्पानगरी में कामदेव गाथापति रहता था । उसके पास १८ करोड़ सोनैये एव छ गोकुल थे । सेठानी का नाम मद्रा था । भगवान् महावीर पधारें तब उसने द्रत धारण किए ।

एक दिन वह पौष्य शाला में पौष्य बरके घम घ्याम में लीन हो रहा था । आधी रात के समय वहाँ एक भयकर पिशाच रूप देव आकर बोला—कामदेव । मद्यपि तुम्हें अपने द्रत नियम से विचलित होना नहीं कल्पता किन्तु मैं तुम्हें आज अवश्य ही विचलित करूंगा । यदि तू घम को न छोड़ेगा तो इस तलवार से तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालूंगा । तीन बार इस तरह घमकी देने पर भी श्रावक अडोल रहा । गुस्से में होकर पिशाच ने उसे काटना शुरू किया । घोर वेदना हुई, किन्तु समभाव से सहन की । देव मदनोन्मत्त हाथी बना, कामदेव को अपनी सूड से आकाश में उधाला । गिरते समय अपन सीखे दाँतों पर झेला एव जमीन पर पटक कर तीन बार रोदा । असह्य पीडा हुई किन्तु श्रावक का एक रोम भी न चला ।

फिर देव ने महाकाय सर्प का रूप बनाकर कामदेव की गदन में तीन अंटे डाल कर छाती में जोर से डक मारा । इतने पर भी वह अपने घम में सुदृढ़ रहा । उसकी भावना में घम के प्रति तनिक भी उपासी न आई । देव प्रसन्न हुआ एव असली दिव्य रूप से प्रकट

होकर कहने लगा—कामदेव ! तुम धन्य ही इत पुण्य हो एव तुम्हारा जन्म सफल है। शक्रेन्द्र ने तुम्हारी धम दृढता की प्रशंसा की। विश्वास न होने पर मैंने परीत्याय तुम्हें धोर कष्ट दिया। उसके लिए मैं तुमसे पुन पुन क्षमायाचना करता हूँ—ऐसे कह कर वह बंता स्वस्थान गया।

अचानक भगवान् पधारे। कामदेव दर्शनार्थ गया। प्रभु ने साधु साधियों की सभा में उसकी धम दृढता की भूरि भूरि प्रशंसा की। आनन्द ध्रावकवत् बीस वष तक ध्रावक धम का पालन करके एक मास की सलेखना से मर कर अदणाम विमान में देवता हुआ। वहाँ से च्यव कर महाविन्देह क्षेत्र में जन्म लेकर मुक्ति प्राप्त करेगा।*

दुसरा-पुज

(१) प्रश्न—अतधारा ध्रावकों का विवेचन कीजिये ?

उत्तर—अत का अर्थ त्याग, सकल्प अथवा प्रतिज्ञा है। अनी ध्रावक की स्थूल हिंसा आदि पापों का त्याग करना परमाश्यक है। त्याग किये बिना अतो ध्रावक नहीं बन सकता।

(२) प्रश्न—यदि मनुष्य हिंसा आदि करे ही नहीं, ता फिर उमको त्याग करने की क्या जरूरत है ?

उत्तर—त्याग को अिवाड के समान माना गया है। अिवाड बन्द किये बिना पाप रूपी धोर डाकुओं का आना बन्द नहीं होना।

दूसरी बात यह है कि त्याग करने से व्यक्ति विश्वासपात्र बन जाता है। इसीलिए तो राष्ट्रपति प्रधानमंत्री आदि पदों को ग्रहण करते समय चाहे कितने ही सच्चे एवं ईमानदार व्यक्ति क्यों न हों उन्हें तत्-तत् पद सम्बन्धी शपथ दिलाई जाती है।

(३) प्रश्न—आगे चलकर कदाच घत टूट आये तो ?

उत्तर—बन्धुओं ! जैसे—व्यापार करने वालों के व्यापार में घाटा भी हो जाता है मोजन करने वालों के बहजमी भी हो जाती है, और बालों के मोतियाबिन्द भी आ जाता है चलन वालों के ठोकर भी लग जाती है तथा रेल-मोटरो की सवारी करने वालों के एक्सीडेंट भी हो जाने हैं फिर भी लोग व्यापार आदि को नहीं छोड़ने किन्तु भविष्य में विशेष सावधानी रखने की कोशिश करते हैं। उसी प्रकार प्रमाद्वन कदाच घत टूट भी आये तो प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध होकर भविष्य के लिये विशेष सजगता रखो जा सकती है।

कई लोग विनाश व्यापार एवं घन-सम्पत्ति का बहाना लेकर घत धारने में आना कानी करते हैं। उनके लिये जानियों का फरमान है कि जिनके करोड़ों का व्यापार एवं घन या उन आनन्द आदि श्रावकों न घत धारे हैं। जो अग मगवन्श का प्रधानमंत्री था, उम अमयकुमार न घत प्रण किये हैं। विनाश गणराज्य के अध्यक्ष महाराजा चेटक (निष्ठा) एवं सिंधु सीवीर आदि सोलह देशों के स्वामी महाराज उदायन भी बारह घनधारी श्रावक बन हैं, तो फिर तुम्हारे पास कितना व्यापार एवं घन सम्पत्ति है तथा कौनसा

विशाल राज्य है ? बहानावाजी छोड़कर जल्दी से जल्दी द्रत धारण करो एवं मनुष्य अन्न को सफल बनाओ ।

(४) प्रश्न— क्या दारुप्राय विधान के अनुसार श्रावकों को सशस्त्र द्रत धारण करने पड़ने है या अपनी इच्छा के अनुसार धारे जा सकते हैं ?

उत्तर—भगवान के दो पुत्र हैं—साधु और श्रावक । साधु बड़े और श्रावक मन्हे । जैसे—बड़े पुत्र को पिता बड़े से कड़ा कार्य करने को कह देता है, लेकिन मन्ह का उसकी इच्छा व शक्ति के अनुसार ही कहता है उसी प्रकार प्रभु ने साधुओं के लिये तो महाव्रतों का (जिनका पालन कठिन है) विधान किया एवं श्रावकों के लिये अणुव्रतों (यथाशक्ति लिये जाने वाले छोटे छोटे व्रतों) का उपदेश किया है । इसीलिये श्रावकों के पञ्चव्रतों का पालन कठिन रह जाते हैं । हाँ तो ! तब यही निकला कि श्रावक अपनी इच्छा के अनुसार द्रत पञ्चव्रतों से सकते हैं ।

उपासकशास्त्र सूत्र में वर्णित आनन्दादि श्रावक का इतिहास पढ़ने से भी यही बात मिलती है । वहाँ किसी श्रावक ने तीन करोड़ स्वर्णमुद्रा रखी है, किसी ने बारह एवं चौबीस करोड़ । किसी ने दस हजार गायें रखी हैं एवं किसी ने चालास अथवा साठ हजार ।

वास्तव में श्रावक जितना त्याग करता है वह द्रत है—धर्म है और जितना आहार रखता है वह अद्रत है—अधर्म है । इसी अपेक्षा

से श्रावक को अज्ञात^१ घमाचर्मो^२ सयनासयतो^३ एव पञ्चवक्त्राणा-
पञ्चवक्त्राणी^४ कहा है ।

(५) प्रश्न—व्रत कितने होते हैं ?

उत्तर—चारह माने गये हैं—पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और
चार शिक्षाव्रत^५ । अणुव्रतों में पहला अहिंसा अणुव्रत है ।

(६) प्रश्न—हिंसा अहिंसा का रहस्य समझाइये ?

उत्तर—प्रमत्तयोग से अर्थात् अज्ञान मिथ्याज्ञान, द्वेष एव प्रमाद
मय चेष्टाओं द्वारा जीवों को मारना हिंसा है^६ एव हिंसा का तीन
करण, तीन योग से त्याग करना अहिंसा है । हिंसा चण्ड है, छद्र है
सुद्र है अनाय है, निघ्न है^७—अहित करने वाली है अवोध करने
वाली है कर्मों को गाठ है, मृत्यु है एव नरक है।^८ अहिंसा व्रत स्था-
वर सभी जीवों का कल्याण करने वाली है एव मध्य जीवों को सकट
में शरण देने वाली है।^९ जैसे सभी नदियाँ समुद्र में एक एक करके
मिलती हैं उसी प्रकार सभी घम अहिंसा-घम में समा जाते हैं।^{१०}
भाव यह है कि दूसरे सभी घम नदियों के समान हैं एव अहिंसा
धर्म समुद्र के समान है । साधु अहिंसा घम का सर्वथा पालन करते हैं
और श्रावक उसे यथाशक्ति ग्रहण करते हैं ।

(१) पञ्चांग-टीका, विवरण ६ (२) स्था०, ३।४ (३) स्था० ४।४ ।

(४) भगवती, ६।४ (५) श्रावकावश्यक प्र० १ ।

(६) तत्त्वार्थविगम, ७।८ (७) प्रश्नव्याकरण १ ।

(८) भाषा०, १।२ । (९) प्रश्न व्याकरण ६ । (१०) सम्बोधनतरी ६ ।

७) प्रश्न—अहिंसा अणुवत् मे श्रावक क्या स्थाप करता है ?

उत्तर—निरपराध प्रेम जीवों को सकल्पपूर्वक हिंसा करने का स्थाप करता है ।

जीव दो प्रकार के होते हैं—प्रस और स्यावर ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय एवं पंचन्द्रिय जीव प्रस कहलाते हैं और एकेन्द्रिय जीव (पृथ्वीकाय अप्काय तजस्काम वायुकाय एवं वनस्पतिकाय स्यावर मान जाते हैं ।)

हिंसा दो प्रकार की होती है —सकल्पजा और आरम्भजा । सकल्प म अघात मारने की नीति से जीवों को मारना सकल्पजा हिंसा है एवं अन्य आरम्भ करते समय अन्य जीवों का मर जाना आरम्भजा हिंसा है । जैसे पृथ्वी खाने, हल चलाने मवान बनवाने आग सुल्फाते, वनस्पति का छदन भेदन करते सले हुए अनाज को साफ करते, गाड़ी घाडा रेल मोटर आदि की सवारो करत स्वास्थ्य रक्षार्थ बिरेचन आदि लेते एवं टट्टी नाली आदि को साफ करत, मारन की भावना नहान पर भी घूमि, चीटी मकली घुग टिट्टो साँव आदि जीव मर जाने हैं ।

गृहस्थ होने के कारण श्रावक प्रस जीवों को आरम्भजा हिंसा नहीं छोड सकता केवल सकल्पजा हिंसा छोडता है । वह भी निरपराध प्राणी की अपेक्षा से छोडता है । यदि उस पर कोई आक्रमण करे या उसका बुरा बियाड करना चाहे तो उसे सकल्पपूर्वक भी मार डालता है । क्योंकि वह उसका अपराधी बन जाना है एवं उसने

(१) श्रावकावश्यक ।

निरपराध प्राणी को ही मारन का सकल्प किया है। इसी आधार पर महाराज चेटक ने बारह ब्रत धारी श्रावक होते हुये भी सग्राम में वाली आग्नि दस राजकुमारों को मारा था।^१

(८) प्रश्न—चाहे परिस्थितिवश आत्मरक्षा एव देण आग्नि की रक्षा के लिये श्रावक को युद्ध भी करना पड़े लेकिन आम तौर पर उसका खान-पान आदि कैसा होना चाहिये ?

उत्तर—सकल्पपूर्वक ब्रह्म जीवों की हिंसा का त्याग करने वाले श्रावक को मांस अण्डा नहीं खाना चाहिये मन्त्रिपान नहीं करना चाहिये, मासादिमिथिन औषधियों से बचना चाहिये, रात्रि में मोचन न करना चाहिये, बिना छाना पानी न पीना चाहिये मोचन को बूझ न छोड़ना चाहिये, देसे बिना छाना-लकड़ी आदि को न जलाना चाहिए रात्रि को खाना न पकाना चाहिये व माडू न लगाना चाहिये। आटा आदि जिन श्रावक वस्तुओं में जीवा की उत्पत्ति विशेष होती हो उनका अधिक संग्रह न करना चाहिये एवं जहाँ तक हो सके ब्रह्म जीवों की हिंसा से बचने का उपाय करना चाहिये।

(९) प्रश्न—क्या श्रावक का स्थावर जीवों की हिंसा का त्याग करना जरूरी नहीं है ?

उत्तर—नहीं क्यों ? यथाशक्ति अवश्य त्याग करना चाहिए। यद्यपि वह साधुओं की तरह समूची स्थावर हिंसा नहीं छोड़ सकता, फिर भी कुछ न कुछ तो छोड़ ही सकता है। जैसे—

पृथ्वीकाय की हिंसा से बचने के लिए—मयादिन सत्या से

अधिक नये मजान दुकान कुण्ट कुआं, तालाब आदि नही बनारुंगा । इतने एक्ड से अधिक खेती नहीं करुगा ।

अपुकाय की हिसा से बचने के लिए—यन्त्रादि द्वारा निकाल कर पानी नही बेचूगा । होली आदि पव पर पानी नहीं उछालूगा व कच्चा पानी नही पीऊगा ।

तेजस्काय की हिसा से बचने के लिए—प्रतिदिन इनो सख्या से अधिक घूरहा भट्टो, लालटेन बिजली-बत्ती आदि नहीं जलाऊगा । बिवाहोत्सव एव दोवाली आदि पव पर आतिशयाजो न छोडूगा, होली न जलाऊंगा । बीडो, सिगरेट चिलम हुका आदि न पीऊगा ।

वायुकाय की हिसा से बचने के लिए—इतनी सख्या से अधिक पख काम मे न लूगा व घर मे न लाऊंगा । अमुक अमुक महीनों मे पखों की हवा न लूगा । अमुक सख्या उपरान्त टेलीफोन रेडियो आदि न बसाऊंगा । पतंग न उडाऊंगा एव बाजा न बजाऊगा । साधुओं से खुले मुँह बात न करुगा ।

वनस्पतिकाय की हिसा से बचने के लिए—अपनी वाय में न आने वाले वृक्ष को जड से न काटूगा । बेचने के लिए अनाज आदि न पोसगा, फल फूलों का रस न निकालूगा, तिल-सरसों-भूंगफली आदि को न पेलूगा तथा घर खर्च के लिए मर्यादा उपरान्त वनस्पति का छेदन भेदन न करुगा ।

उपयुक्त विधि से त्याग करने पर स्थावर जीवा की हिंसा से काफी बचा जा सकता है ।

१० प्रश्न—अहिंसा अणुव्रत के अतिचार समझाइये ?

उत्तर—पाच अतिचार माने गये गये हैं—१ बन्ध २ वध
३ छविच्छेद ४ अतिभार ५ मदनपान विच्छेद ।

बन्ध—असज्जियों को रस्सी आदि से बांधना बन्ध है । यह दो प्रकार का है—द्विपदबन्ध और चतुष्पद बन्ध ।

मनुष्य-पत्नी आदि को बाधना द्विपदबन्ध है एवं गाय भस आदि चार पदों वाले जीवों को बाधना चतुष्पद-बन्ध है । एवं एक के पुन दो-दो भेद हैं—अयबन्ध और अनयबन्ध । प्रयोजनवग बांधना अयबन्ध है, और निप्रयोजन बांधना अनयबन्ध है । अनयबन्ध अतिचार है ।

अयबन्ध भी दो प्रकार का होता है—सापेण और निरपेण । सुगमता से खोला जा सके एवं जिमे बांधा जा रहा है वह विशेष कष्ट न पाये ऐसी अपेक्षा रखकर बाधना सापेक्षबन्ध है तथा निर्दयता पूर्वक गाड़-बन्धन से बाधना निरपेक्षबन्ध है—यह अतिचार है । आवश्यकतावग पशुओं को तथा शिक्षा देने के लिए (दास-गामी चोर एवं अविनीत पुत्रादि) मनुष्यों को भी क्वचित् बांधना पड़े तो श्रावक को निरपेण न बाधना चाहिए ।

(२) वध—धातुक आदि से पीटना वध है । इसके भी पूर्ववत् भेद है । अनर्थ एवं निरपेण पीटना अतिचार है । मनुष्यों और पशुओं को सुधारन की भावना से पीटते समय भी श्रावक को यह ध्यान रखना

रुहो है कि कही मम स्थान में चोट लग कर नुकसान न हो जाय ।

(३) छविच्छेद—बिना कारण निरपेक्षता से जीवों के हाथ-पंजाक कान आदि का छेदन करना छविच्छेद अतिचार है, किन्तु रोग मिटाने की भावना से आपरेशन आदि करना या दाग (डाम) लगाना अतिचार नहीं कहलाना ।

(४) अतिभार—मनुष्यों एवं पशुओं पर स्वार्थवग एवं निदयता से बोझ लादना अतिभार-अतिचार है । श्रावक को ऊँट घोडा आदि से ब्राडा कमाने की आजीविका न करनी चाहिए । कारणवश करनी ही पडे तो तत् तत् स्थानीय नियम (जसे ऊँट पर ५ ६ मन, ऊँटगाडा में ४ ५ सवारी तागा या घोडागाडा में ३ ४ सवारी, मनुष्यों पर २ ३ मन एवं मनुष्यवाही रिक्शों पर २ सवारी) से अधिक बोझ न लादना चाहिए तथा तागा रिक्शा आदि में पूरी सवारिया हो गई हों तो ब्रतधारी श्रावक को उस पर न चढ़ना चाहिए । इसके सिवा पशुओं अथवा मनुष्यों द्वारा मर्यादित समय (८ १० घंटा) से अधिक श्रम लाना भी इसी अतिचार में समझना चाहिये ।

(५) भक्तपान—विच्छेद—बिना कारण अथवा मारन की भावना से अपन आश्रित मनुष्यों व पशुओं के दान पान में अन्तराय दना अथात् उन्हें भूखे मारना भक्तपानविच्छेद अतिचार है । (दूध न देने से गायों बैसों को क्रुद्ध होकर चारा आदि न डालना तथा पुत्र-पुत्री व नौकर चाकर से क्रुद्ध गलती हो जाने पर उन्हें रोटी पानी न देना भी इसी अतिचार में है । किन्तु रोगादि मिटान की भावना से रोगी

का यदि मनचाही चोज (त्रिगुण उभरे पुरमान ही) न दी जाय तो वह अनिचार नहीं है तथा गिना देने के लिए बृद्ध समय आहार पानो न देना एवं न देन की घमती गिनाता भी इसी रूप में मानना चाहिए ।

(११) प्रश्न—रक्षा व्रत दिनन करण-विचने योग से दिया जाता है ?

उत्तर—सामान्यतया दो करण तीन योग से दिया जाता है । तत्त्व यह है कि धावन स्थल-त्रिमा ? मा से १ गी करता २ मन से नहीं करवाना ३ वचन से नहीं करना ४ वचन से नहीं करवाता ५ बाया म नहीं करता ६ बाया से नहीं करवाता—ये छ शोटी पञ्चवक्षणा कहलाते हैं । गृहस्थ होने से वह अनुमोक्षा का त्याग नहीं कर सकता ।

तीसरा पुञ्ज

(१) प्रश्न—दूसरा अनुव्रत समझाइये ?

उत्तर—दूसरा सत्य अनुव्रत है । इसमें धावन स्थूल असत्य का दो करण-तीन योग से त्याग करता है ।

(२) प्रश्न—सत्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—सत्पुरुषों के लिए जो हितकारी है उसे सत्य कहते हैं । इसका चार रूप हैं—१ बाया की सरलता । २ भाया की सरलता

३ भावों को सरलता ४ कथनी करनी में समानता । जिस किसी भी क्रिया में छल-कपट प्रविष्ट हो जाता है, फिर वहाँ सत्य नहीं रह सकता ।

जैसे तेज के बिना सूर्य, शीतल प्रकाश के बिना चन्द्रमा, निगमना के बिना दूध घी, भूल मिटान की शक्ति से शून्य अनाश, प्यास न बुझा सकने वाला पानी और प्राणविहीन सुन्दर शरीर ये सभी निकम्मे हैं, उसी प्रकार सत्य के बिना मनुष्य भी कोई काम कर नहीं । सत्य ही मनुष्यता है । मनुष्यता ही क्या, शास्त्र में सत्य को भगवान् भी कहा है* ।

(३) प्रश्न—असत्य का क्या अर्थ है ?

उत्तर—अवयवाय भाव को प्रकट करना असत्य है* । यह लोगों में अविश्वास का कारण है* । मद्य दुःख अपयश तथा धर का करने वाला है* । असत्य क्रोध-लोभ मय आदि के निमित्त से प्रकट होता है । साधु इसका संवया तीन करण-तीन योग से त्याग करते हैं, लेकिन श्रावक अपनी दुर्बलता के कारण केवल बड़े झूठ का त्याग करता है ।

(४) प्रश्न—बड़ा झूठ कितने प्रकार का है ?

उत्तर—पाँच प्रकार का माना गया है*—१ कथालीक २ गवालीक ३ भूम्यलीक ४ न्यासापहार ५ बूटसाक्षिज ।

१—प्रश्नव्याकरण ७ ।

३—दशम ० ७।१३

२—अन सिद्धान्त दीपिका ७।७ ।

४—प्रश्न व्याकरण २

१—स्या० ५।१।३=६

१. बन्ध्यालीक—बन्ध्या से सम्बन्धित मूठ बोलना बन्ध्यालीक कहलाता है। इसका त्याग श्रावक चार प्रकार से करता है।

द्वय्य से—ह्रस्ववती पूर्णाङ्गी एव उच्चशक्ति की बन्ध्या को स्वार्थ या द्वय्यका कुम्प, अङ्गहीन एव मीष जाति की कहकर जुष्टे हुए वैवाहिक-सम्बन्ध में धक्का नहीं लगाता तथा उचन नोपवाली बन्ध्या का अच्छी बना कर किसी के साथ सगपन नहीं करता।

क्षेत्र से—दूसरे गांव देग की बन्ध्या को किसी दूसरे गांव-देश की बना कर टगाई नहीं करता।

काल से—बन्ध्या की आयु के सम्बन्ध में मूठ नहीं बोलता अर्थात् स्वार्थादिका उमे कम यादा आयु की नहीं बताता।

भाव से—बन्ध्या के गुणो-दुगुणों के विषय में असत्य नहीं बोलता यानि चतुर तथा दुर्विनीत को विनीत एव विनीत को दुर्विनीत नहीं कहता।

यद्यपि श्रावक दूसरों की बन्ध्या के विषय में तो मूठ नहीं बोलता लेकिन वह कहता है कि मेरे ही घर में या परिवार में कोई बाण कसर बागे बन्ध्या उत्पन्न हो आयगी तो मुझे मूठ बोल कर भी उसको रास्ते लगाना ही होगा क्योंकि कुशारी-बन्ध्या को जीवन भर घर में रखना असम्भव है। बन्ध्या के नाम से कहा हुआ यह मूठ का त्याग मनुष्य मात्र के विषय में समझ लेना चाहिए अर्थात् घर के विषय में भी बूढ़े को अवान, रोगी को निरोग आदि कह कर किसी का वैवाहिक सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये क्योंकि अनुचित जोड़ा जुष्टने से घर-वधू जीवन भर के लिए दुःखी हो जाते हैं।

२ गवालीक—गाय भंस आदि पशुओं के सम्बन्ध में असत्य बोलना गवालीक है ।

श्रावक गाय भंस आदि के विषय में द्रव्य क्षेत्र काल भाव से असत्य नहीं बोलता । जैसे— अच्छी गाय भंस आदि को दुरी एव दुरी को अच्छी नहीं कहता अधिक दूध वाली को उसट (कम दूध वाली) एव उसट को अधिक दूध वाली नहीं बताता तथा मारने वाली को मूधी एव सूधी को मारने वाली कह कर किसी को नहीं ठगता । इसी प्रकार ऊट घोडा आदि के विषय में भी मूठ नहीं बोलना ।

३ भूम्यलीक—भूमि खेत मकान दूकान कुआँ तालाब एव बाग आदि के विषय में मूठ बोलना भूम्यलीक है । श्रावक स्वार्थ या लोभवश उपजाऊ भूमि को उजर एव यजर को उपजाऊ नहीं कहता । अच्छे मकान आदि को खराब, अगुम या सनात्प्रस्त तथा खराब व उत्कृष्ट बहम वाला का अच्छा नहीं कहता । मोरा न हो तो बह मोन रह जाता है, लेकिन इस प्रकार मूठ नहीं बोलता ।

(४) न्यासापहार—विश्वास करके अमानत के रूप में रखी हुई वस्तु को स्वामी व मॉगने पर नष्ट जाना न्यासापहार है । यह बड़ा भारी विश्वासघात एव जुल्म है, अतः श्रावक इसका स्वागत करता है ।

१—अने क या की मनुष्यमात्र की जननी होने से मुख्य मानकर वास्तविकार ने उसके नाम से मनुष्य सम्बन्धी असत्य का निषेध किया है सम्भवतः उसी प्रकार यहाँ गाय को भी पशुओं में घेष्ठ सम्भार उसके नाम से पशु सम्बन्धी असत्य का प्रतिषेध किया है ।

(५) कूटसाक्षी—अपने या पराये लाभ के लिए तथा किसी को हानि पहुँचाने के लिए न्यायाधीन, पचायत सभ आदि के सामने असत्य भाषण करना कूटसाक्षा है। यह महानिन्दनीय एवं घोर पाप माना गया है। मनुस्मृति धामरे में कहा गया है कि झूठी साक्षी देने वाला तो जन्मों तक बरहण की फाँसी में बाधा जाता है।

यद्यपि आज के न्यायालयों में अधिकांश झूठी साक्षिया चलती है फिर भी श्रावक को इससे बचना ही चाहिए। विकट परिस्थिति में भी यह त्याग तो उसे जरूर करना चाहिए कि जिसस सामन बाने का भारी नुकसान हो जाय अथवा घर नष्ट हो आय बसी झूठी साक्षी में कभी नहीं दूंगा।

(६) प्रश्न—दूमरे घन के अतिचार बनलाइये ?

उत्तर—पाँच अतिचार हैं—१ सहसाम्याख्यान २ रहोड्या ख्यान ३ स्वदारमन्त्रभेद ४ मृपोपदेग ५ कूटलेखकरण।

१ बिना विचारे असावधानी से किसी पर निर्या आरोप—झूठा कलक लगाना सहसाम्याख्यान अतिचार है—जैसे यह चोर है, व्यभिचारी है असत्यवानी है आदि आदि कह देना। यदि जानते हुए इरादापूर्वक तीव्र सक्ते से आरोप लगाया जाय तो वह अनाचार बन जाता है एवं घन भंग हो जाता है। अभ्याख्यान का अर्थ झूठा कलक है।

(२) एकान्त में सलाह करते हुए व्यक्तियों पर सन्देह करके झूठा आरोप लगाना रहोड्याख्यान अतिचार है। जीने-ये राजविहदू मन्त्रणा

कर रहे हैं, य स्त्री पुरुष बदनामी की बात कर रहे हैं अथवा वे मेरी निन्दा कर रहे हैं।

श्रावक को किसी पर इस प्रकार का मिथ्या-आरोप नहीं लगाना चाहिए। साधु पर आरोप लगाने से ही महासती सीता पर मूठ कलङ्क आया था एवं उसे जङ्गल में भटकना पड़ा था। किसी पर मूठ मानना करना भी एक प्रकार से मिथ्या आरोप ही है।

(३) स्व-स्त्री के साथ एकान्त में हुई विद्रव्यमन्त्रणा (वार्तालाप) को दूसरे के आगे कहना स्ववारमन्त्रभेद है।

यद्यपि कहने वाला व्यक्ति स्त्री के साथ हुई सत्य वार्ता को ही प्रकट करता है, किन्तु गुप्त बात प्रकट हो जाने से लज्जा या सङ्कोचवर्गी स्त्री कदाचित् आत्महत्या करले अथवा जिसके आगे उक्तमन्त्रणा प्रकाशित की गई है, उसे मार डाले। इस प्रकार अनधपरम्परा का कारण होने से गुप्तमन्त्रणा का प्रकाशन सत्य होते हुए भी श्रावक के लिये अतिचार माना गया है।

इसी प्रकार पुरुषों की गुप्त बात को प्रकट करना स्त्रियों के लिये भी अतिचार है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के बोटे कम गम्भीर होते हैं, अतः उन्हें इस विषय में विशेष सावधान रहना चाहिए।

(४) बिना विचारे असावधानी से या किसी बहाने से दूसरों को मिथ्या उपदेश देना मृषोपदेश अतिचार है। जैसे अमुक समय इस प्रकार भूठ बोलकर हमने अमुक व्यक्ति को हराया था एवं काम

सिद्ध किया था, इस प्रकार कहने से सुनने वाले को भूठ डोलने की प्रेरणा मिलती है अतः यह अतिचार है।

परपोशाकारो उपदेग भी मृपोपदेग ही है। जैसे घोरो को मारना चाहिये ऊँटों गदहों एवं घाडा को चलाना चाहिये अर्थात् इनसे भाडा कमाना चाहिये आनि आनि उपदेग देना।

कोई सलाह लेन आए उन मूठो (उसके अहित को) सलाह देना भी इसी मूठ में माना गया है क्योंकि यह बहुत बडा विश्वास घान है। थावक को इसका पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये।

(५) कूट अर्थात् मूठा लेख लिखना कूटलेखकरण अतिचार है। इसके अनक रूप है जन (१) मूठा खन (सो देखर दो सो) लिखाना (यह काम आतामियो का घन्घा करने वाले सठ लोग अधिक करते है)।

(२) जाळो (नकली) लेख-दस्तावेज मोहर एवं दूसरो के हुस्ता-हार बनाना (यह काम काट या पचीं क सामने अरनी सत्यता प्रमा-णित करने के लिये प्राय बाडो प्रतिवादियो द्वारा किया जाना है)।

(३) जाळो बडो-खाते आदि बनाना। (अधिकार सरकारी टेकमो की चारी करने के लिये बनाये जाने है एवं बनाने वाले प्राय व्यापारी होते है)।

(४) जाळो नोट या सिक्का बनाना। (यह सरकार एवं जनता के साथ बहुत बडो धोखाबाजी करन वाले व्यक्तियो का काम है)।

(५) मिथ्याप्रमाणपत्र अर्थात् मूठे सार्टीफिकेट देना। जने डॉक्टर लोग पैसे लेकर बीमार न होने पर भी बीमारी का एवं मामूली चोट लगन पर गम्भीर चोट लगने का प्रमाणपत्र दे देते है।

उपरोक्त पाचो अतिचारों से बचन पर सत्यव्रत की साधना हो
हो सकती है अन्यथा व्रत भङ्ग हो जाता है ।

(६) प्रश्न—श्रावक को और क्या करना चाहिये ?

उत्तर—बिना विचारे न बोलना चाहिये एव बोलने के बाद
अपने वचन को असत्य नहीं करना चाहिये ।

श्रावक के लिये समय की पावदी भी जरूरी है । भोजन व
निमन्त्रण मान लेने के बाद समय पर ओर कहीं चला जाना ए
दूसरे कार्य में लग कर निमन्त्रणदाता को हैरान करना लज्जास्प
है । इसी प्रकार समा सोसाइटी में अध्यक्ष या प्रमुख-वक्ता बनकर
बहुत समय पर न पहुँचना भी बहुत घृण्य है ।

व्यवहार रखने के लिए कपट सहित मूठ बोलना भी श्रावक
को शोभा नहीं देना । जमे—कोई मोटर प्राणने आता है तो कह
देते हैं कि इंजिन बीमार है या इंजिन बिगड़ा हुआ है ।

(७) प्रश्न—आज दुनियाँ बात बात में बेईमानी कर रही है एव
मर्यादा को तोड़ रही है । देखिये —विद्यार्थी नकल मार कर
परीक्षा में उत्तीर्ण हो रहे हैं । अध्यापक निर्धारित सख्या से
अधिक ट्यूशन कर रहे हैं । व्यापारी लाग छुट्टी व दिनों में
छिपकर व्यापार चला रहे हैं । सेठ नौकरों द्वारा आठ दस
घण्टों से अधिक काम ले रहे हैं । नौकर मालिक का काम करने
से जो चुरा रहे हैं । वकील-बरिस्टर थोमन्तों के केसा को
उल्टा कर उनसे अधिक पसा म्माड रहे हैं । डाक्टर गरीबों
को अच्छी दवा नहीं दे रहे एव धनिक रोगी हाथ में आने पर

जल्दी-से पिण्ड नहीं छोड़ रहे । ऐसी परिस्थिति में श्रावक को क्या करना चाहिये ?

उत्तर—श्रावक को चाहिये जो वह उपयुक्त काले कारनामों से बच कर अपनी प्रामाणिकता का आत्म दुनियाँ के सामने रखे एवं सत्यधर्म का ज्ञान बढ़ाये ।

चौथा-पुञ्ज

(१) प्रश्न—तीसरे अणुत्रय में श्रावक को क्या करना चाहिए ?

उत्तर—अदत्ताग्नय अर्थात् चोरी का मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिए । स्वामी की आज्ञा के बिना उसकी वस्तु को लेना चोरी है । चाहे स्वामी के आगे हाकुओं की तरह ली जाय अथवा उसकी मंत्र सुराकर चोरों की तरह ली जाय ।

(२) प्रश्न —चोरी कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर —चार प्रकार की मानी गई है—१ द्रव्यचोरी २ क्षेत्र चोरी ३ कालचोरी ४ भावचोरी ।

घन धान्य आदि द्रव्य को चोरना द्रव्यचोरी है । खेत, बाग मकान आदि को दबा लेना क्षेत्रचोरी है । वेतन किराया व्याज आदि लेने देने में न्यूनार्थक समय कहना कालचोरी है तथा किसी कवि, लेखक अथवा वक्ता के भावों को चुराना या आगमों का अर्थ बदल देना भावचोरी है । दूसरी तरह से चोरी दो प्रकार होती है—सम्यचोरी और असम्यचोरी ।

(३) प्रश्न — क्या चोरी भी सम्य होती है ?

उत्तर — सम्य उपायों से अर्थात् राजकीय नियमानुसार दण्ड न मिले उन तरीकों से दूसरों का धन हड़प लेना सम्यचोरी है। जैसे—

१ कई लोग अपने व्यापार का झूठा रोब जमाकर लोगों से सामान लाते हैं, व्यवहार करते हैं और अपने यहां उनके लाखों रुपये जमा रखते हैं। इस प्रकार विश्वास जमाकर झूठा जमा-खर्च करके एक दम दिवाला निकाल देते हैं।

२ कई व्यापारी अपनी संपत्ति के बल से बाजार में वस्तुओं के भावों को एकदम घटा बढ़ाकर लाखों रुपये कमा लेते हैं। फलस्वरूप छोटे छोटे हजारों सटोरिये मारे जाते हैं।

३ कई लोग सावजनिक सस्था या लोकोपयोगी कार्यों के लिए धन इकट्ठा करके नाममात्र उन कार्यों में लगाते हैं और शेष खुद हजम कर जाते हैं।

४ कई पत्रों हैण्डबिलों द्वारा विज्ञापन करके लोगों से पेशगी कीमत लेकर ठगवाई करते हैं। जैसे—एक विज्ञापनवाज ने समाचार पत्र में लिखा कि केवल एक आने की टिकिट भेज देने मात्र से हम वह दवा देते हैं जिसको पास रखने पर भोजन करते समय मक्खियाँ नहीं सतातीं। हजारों लोगों ने उसके पास एक एक आने के टिकिट भेजे। विज्ञापक ने एक एक पैसे के काडों पर टिकिट भेजने वालों को उत्तर दे दिया कि आप खाते समय कृपया अपना एक हाथ हिलाते आइये फिर आप को मक्खियाँ नहीं सता सकेंगी।

(४) प्रश्न—सम्यचोरो का दिग्दशन ता हा ११, १२ ३२, ३३, ३४ का रहस्य बतलाइये ।

उत्तर—जिमसे राजा दण्ड दे और लोग निन्दा ३३ ३४ ३५ कह कर पुकारें वह असम्यचोरो है । शास्त्र में इन्द्र ३६ ३७ ३८ गये हैं—१ खात्रखनन २ ग्रान्थिभेदन ३ यन्त्रान्घटन ४ वस्तुहरण ५ सस्वामिकवस्तुहरण ।

(१) गस्त्रों के प्रयोग से मकान दूकान आदि की लोकार घट कर किसी भी प्रकार का धन माल (सचित्त—गाय भन आदि अचित्त—रुपये सोना चादी आदि) निकालना खात्रखनन नाम की चोरो है ।

(२) किसी की गठरी को खोलकर उसमे से माल निकाल लेना या माल को बदल देना ग्रान्थिभेदन नाम की चोरो है । जेवकतरे और रेलकमचारी (जो पासल आदि से माल निकालते हैं) इमी चोरो के अपराधी हैं ।

(३) स्वामी की आना के बिना चोरो की भावना से गेटा गेट कर या नई चायो लगाकर धन माल निकालना यन्त्रान्घटन नाम की चोरो है ।

(४) वस्तु के स्वामी का पता होने पर भी वस्तु को चोरो की नीति मे उठाना वस्तुहरण नाम की चोरो है ।

(५) स्वामी की उपस्थिति में धरो पर हाका डालना या शस्त्र
मे छूट-ससोट करना सस्वामिकवस्तुहरण नाम की चोरी है।

ये पांचो असम्य एव बड़े चोरियाँ हैं। थावक इनका मयाग
उपरान्त त्याग करता है, लेकिन वह कहता है कि दूसरों के माल का
हजम करन की भावना से मैं—ये पांचो प्रकार की चोरियाँ नहीं
करूँगा किन्तु मेरा धन मात्र किसी ने दूरा रखा होगा तो उसे प्राप्त
करन के लिए पूर्वोक्त काय करन का मेरे आगार (छूट) है।

जंगल से दातुन, सेतों में बरडो मनोरी एव बागों में सफल फूल
आदि यदि स्वामी की आज्ञा के बिना तोड़े जाय तो वह भी चोरी
है। गृहस्थ के नाते क्वाचित् त्याग न कर सकें तो भी थावक को,
जहा तक हो सके, ऐसी चोरी से बचना चाहिए।

(५) प्रश्न—मनुष्य चोरी क्यों करता है ?

उत्तर—चोरी का आन्तरिक कारण असन्तोष एवं लोभ है।
प्राणी असन्तोष से हैरान होकर और लोभ से बलुपित होकर ही
चोरी करता है*। एक अनुभवी ने कहा है कि—चोरी की माँ
गरीबी है और बाप अज्ञान है। गानो व्यक्ति गरीबी में भी चोरी
नहीं करता।

चोरी के बाह्य कारण अनेक हैं। उनमें से पहला कारण बेकारी
है। दुष्काल आदि के समय रोटी एव रोजगार न मिलने से विवग
होकर नीची श्रेणी के लोग छूट छसोट या चोरी करन लग जाते हैं।
इसका मुख्य कारण है राज्य की अल्पवस्था। अगर उस समय सरकार

व्यवस्था करके उन लोगों को काम में लगा दे तो देश में अमन घन रह जाता है एवं चोरी डकती आदि क उपद्रव नहीं होते ।

चोरी का दूसरा बाह्य कारण फिजूलखर्ची हैं । इसमें पहला नम्बर जुआ शराब रण्डोबाजो आदि दुव्यसनो का है । दुव्यसनी प्रथम घर की चोरी करते हैं और वहाँ हाथ न लगने पर बाहर की चोरी करन लग जाते हैं । फिजूलखर्ची में दूसरा नम्बर सामाजिक-कुप्रथा का है । विवाह आदि में आँख मीचकर प्रथा के अनुसार खच कर लिया जाता है फिर उसकी पूर्ति के लिये सम्य या असम्य तरीकों से लोगों का मान लूटा जाता है ।

चोरी का तीसरा बाह्य कारण है यश कीर्ति । कीर्ति क मूले लेखक-कवि दूसरों के भावों पद्यों को चुराते हैं तथा यश के अमिलापी सठ-साहूकार गरीबों को घूस चूस कर धन इकट्ठा करते हैं और फिर दानवीर बनकर बाहू बाही लुटते हैं ।

चोरी का चौथा बाह्य कारण है स्वभाव । बहुत से लोग धन की कमी न होने पर भी अज्ञत से लाचार होकर चोरी करते हैं । चोरी किये बिना उनको रोटी भी हजम नहीं होती । चोरी की बुरी आदत प्राय बचपन से पढती है । उसमें अधिकांश दोष माता-पिता का होता है ।

(६) प्रश्न—चोरी के पाप से बचन के लिए श्रावक को और क्या करना चाहिए ?

उत्तर—इन पाँच अतिचारों का परित्याग करना चाहिए ।

१ स्तेनाहृत २ स्तेनप्रयोग ३ विरुद्धराज्यातिक्रम ४ कूटतुल्य
कूटमान ५ तत्प्रतिरूपक व्यवहार ।

(१) चोरो की घुराई हुई वस्तु को बहुमूल्य समझकर लोभवश खरीदना स्तेनाहृत अतिचार है ।

(२) चोरो को चोरो करने में प्रेरणा देना-सहायता देना स्तेन प्रयोग अतिचार है । चोरो को चोरो के उपकरण देना रहन के लिए आश्रय देना खाने के लिए भोजन देना एवं उनका माल बेचना— ये सभी चोरो को प्रेरणा के प्रकार है । प्रश्नव्याकरण अ० ३ में चोरो की १८ प्रसूती (चोरो में सहायता देने वाली बातें) कही है ।

३ मनु राजाओं के राज्य में विरोध के समय आना जाना विरुद्धराज्यातिक्रम अतिचार है क्योंकि उस समय विरोध के कारण एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने की मनाही होती है ।

राजा की आज्ञा के विरुद्ध विदेशों से माल मगवाना और चोरो से बड़ा भेजना जिस वस्तु के व्यापार पर सरकारी प्रतिबन्ध हो उसका व्यापार करना, नियमित भावों से अधिक मूल्य लेकर ब्लेक (चोर आजारो) करना तथा सरकारी देवस जकात आदि को घुराना— ये सभी काम इसी अतिचार के अंतर्गत समझ लने चाहिये ।

४ तोल माप में लोभवश न्यूनाधिकता करना अर्थात् वस्तु लेते समय अधिक लेना एवं देते समय कम देना कूटतुल्य कूटमान अतिचार है ।

वस्तु आदि का लेन देन दो प्रकार से होता है—नराजू आदि से ताल कर या गज मोटर आदि से माप कर । हाँ । तो थावक को

तोल माप के साधन प्रमाण से हीन—अधिक यानि लेने के भारी और देने के हल्के या बड़े-छोटे न रखने चाहिये तथा क्रय विक्रय करत समय जान-धूम कर न तो अधिक लेना चाहिए और न कम देना चाहिए । ग्राहक चाहे बालक हो धृद्ध हो मूर्ख हो अथवा विद्वान् हो अपनी प्रामाणिकता का उल्लंघन कभी न करना चाहिये ।

कुरान मे कहा है कि नाप-तोल मे कमी न किया करो^१ । बड़ी खराबी है नाप-तोल मे कमी करने वालों के लिए^२ । बाइबल मे कहा है कि न्याय मे, परिमाण मे तोल मे और नाप मे कपट न करना, सच्चा तराजू, धम के बटखरे सच्चाएपा और धम की तोल तुम्हारे पास है^३ ।

५ बहुमूल्य बढ़िया वस्तु मे अल्पमूल्य वाली घटिया वस्तु (जो उसी के सदृश रूप रंग वाली एव उसमें छप सकने वाली हो) मिला कर बेचना । असली के सदृश आकार प्रकार वाली नकली वस्तु को असली के नाम से बेचना तथा अच्छा नमूना दिखाकर हल्का माल भर देना सत्प्रतिरूपकव्यवहार अतिचार है ।

आज कल मिलावट का बाजार बहुत तेज चल रहा है—आटा मे चिकना-पन्धर धो मे बेजीटेबल, दूध मे पानी एव मलाई पैदा करने के लिए स्याहीसोख, शक्कर मे सेक्रोन हल्कीमे रामरज लालमिच मे गेहू, कालीमिच मे पपीते के बीज, बादाम की गिरियों मे खुमाणी

१—कुरान २१।४

२—कुरान ८३।१

३—पुरानी बाइबल तोरा लेव्यव्यवस्था १६।३५

की गुठली, सुपारी में खजूर की गुठली एवं पोसे हुए मसालों में बुरादा मिट्टी ककर आदि मिलाकर व्यापारी लोग जनता को धोखा दे रहे हैं और और पापों की गठरियाँ भर रहे हैं ।

कपड़ा बनाने वाले मिल-मालिक पहले बहुत बढिया कपड़ा निकालते हैं किन्तु चल पडने के बाद सूतों में कमी करने लगते हैं । औपघि बनाने वालों का भी यही हाल है । प्रारम्भ में औपघियों जितना लाभ दिखाती हैं, कुछ समय के बाद उनमें उतना तेज प्राय नहीं रहता । कारण यही है कि बनानेवाले औपघियों में प्रमुख चीजों की मात्रा कम कर देते हैं या घटिया किस्म की डालने लग जाते हैं ।

प्रश्न ७ ब्लेक का त्याग करने वाला धायक यदि ब्लेक की कमाई खाय तो ?

उत्तर अत का उपहास होगा और धम को लज्जा लगेगी । चाहे वह करण-योगों के हिसाब से खुद की निर्दोष मानता रहे दुनियाँ उसको धर्मी न कह कर ढोंगी ही कहेगी ।

प्रश्न ८ रिश्वत लेना बड़ी घोर है या छोटी ?

उत्तर शास्त्रवाणी के अनुसार रिश्वत बहुत बड़ी चोरी और विश्वासघात है ।

आज के लोगों ने इसको दाढ़-रोटी बना रखा है । जिधर भी देखा जाय रिश्वत ही रिश्वत नजर आ रही है ।

आज किसी को अपनी पूँजी लगाकर दूबान करनी ही तो प्राय-साइस चाहिये और लाइसेंस देने वाला कुछ भेंट-पूजा लिए बिना बात नहीं करता ।

अगर बच्चों को स्कूलों कॉलेजों में दाखिल करना हो तो प्रिंसिपलों—प्रोफेसरों—मास्टर्स को जेब गम किये बिना काम नहीं बनता ।

अगर लम्बी मुसाफिरी के लिये सीटें रिजर्व करवानी हों तो ट्रेनिंगमास्टर मुँह फाड़े दृष्टिगोचर होते हैं एय माल के डिब्बों की प्रावश्यकता हो तो मालवाबू उसी रूप में मिलने हैं ।

अगर अदालत में छोटी बड़ी कोई दरखास्त पेश करनी हो तो चपरासी कहते हैं भाई ! दरखास्त पर कुछ धरन रखो ! अन्यथा उड़ जायगी, अर्थात् कुछ हमें दो !

अगर किसी के साथ मार-पीट हो जाय तो रिद्वत लिये बिना पुलिस घाने बाते सच्ची रिपोर्ट भी प्राय नहीं लिखते ।

अगर नया मकान बनवाना हो तो नगरपालिका अधिकारी रिद्वत के बिना सहज में नहीं बनने देते ।

बड़े शहरों (बम्बई-कलकत्ता जैसे) में यदि किराये पर दूकान लेनी हो तो सलामी या पगड़ी के रूप में हजारों रुपये गुप्त-गुप्त दिये बिना काम नहीं बनता ।

प्रश्न ६—रिद्वत का वास्तविक अर्थ क्या है ?

उत्तर—स्वार्थसिद्धि के लिये अप्रामाणिक रूप से कुछ लेने-देने का नाम रिद्वत है । यह नोट, दूध घी, चीनी, फूट, मिठाई, वस्त्र एवं आभूषण आदि अनेक रूपों में दी जाती है । कहीं चुपचाप नोट दिये जाते हैं तो कहीं दूध-चाय, सोडा वाजत एवं शराब आदि पिलाये जाते हैं । कहीं अनाज एवं चीनी की बोखियाँ भेजी जाती हैं तो कहीं घी तेल के पीये पहुँचाये जाते हैं । कहीं नायलोन की साडियाँ उपस्थित

की जाती है तो कहीं टैरेलीन के सूट भेंट किये जाते हैं। अधिकारियों का जसा मुख होता है, प्रायः वसा टोका निकालना ही पड़ता है।

राज्य कर्मचारी यदि रिश्वत लेना छोड़ दे तो राज्य की अर्थ व्यवस्था काफी हद तक अच्छी हो सकती है। इनकम टैक्स अधिकारियों को क्षय्य खाकर सरकार के हजारों का नुकसान कर देने हैं। इन्होंने निरपेक्ष ठेकेदारों से मिलकर (बांध, पुल, सड़क आदि) बनाने समय लाखों की जगह दो-तीन लाख उड़ा देते हैं। और तो क्या! पद स्विकारते समय प्रामाणिकता से काम करने की विधिपूर्वक शपथ ले वाले बड़े बड़े मन्त्री भी योका पाकर लाखों की चटनी कर खाते हैं।

लगभग २३०० वर्ष पूर्व कहीं हुई आणव्य ऋषि की भाणी का अन्तरा मिल रही है। उन्होंने कहा था कि जिस प्रकार जीम पर रहे हुए मधु या विष का स्वाद न लेना अशक्य है उसी प्रकार धन सामने आने पर उसे न लेना राज्यकर्मचारियों के लिये अशक्य-सा है। जैसे जल में संचरण करते हुए मत्स्य जब जल पी लेते हैं, उसका पता नहीं चलता, उसी प्रकार काय नियुक्त राज्य कर्मचारी कहां अर्थ ग्रहण कर लेते हैं उसका सहज में पता नहीं लग सकता।

(१०) प्रश्न—रिश्वत लेना तो चोरी है किन्तु विवशतावश देनी पड़े तो ?

उत्तर—देना भी चोरी ही है क्योंकि देने वाले ही रिश्वत लेना सिखाते हैं तथा अधिकांश रिश्वतदाता तो दस की रिश्वत देकर स्वयं सौ-दो सौ की सरकारी चोरी करते हैं।

(११) प्रश्न—वोटों के लिये पैसा लेना-देना भी क्या रिश्त है ?

उत्तर—रिश्त ही, नहीं दुनियाँ के साथ बहुत बड़ी धोखेबाजी है। इसक वजह से ही अयोग्य व्यक्ति देश के कणधार बनते हैं एव प्रजा का शोषण होता है। श्रावक को वोट की प्राप्ति के लिये किसी को धन का प्रलोभन न देना चाहिए तथा न ही पैसा लेकर किसी को वोट देना चाहिये।

(१२) प्रश्न—चोरो के विषय मे प्रभु ने विशेष क्या कहा है ?

उत्तर—प्रश्न व्याकरण अ०३ मे प्रभु ने कहा है कि चोरो अपमश करने वाली है अनार्यों का काम है, सभी सन्तों द्वारा निन्दनीय है, प्रिय मित्रों मे मद एव अप्रोति उत्पन्न करने वाली है तथा राम द्वेष से भरी हुई है।

पकड़े जान पर चोरा की बड़ी भारी दुदशा होती है। राजपुरुष उन्हें हथकड़ी बेड़ी पड़ना कर राज मार्गों मे घुमाते है। कइयों को शूली एव घृण पर लटकाने है। कइयों को हाथ पर बावकर पवत से गिराते है। कइयों के नाक कान-हाथ पर आदि काटते है तथा कइयों को जन्मकद एव देग निकाले की सजा मिलती है। इस जन्म मे चोरो को इस प्रकार अनेक कष्टों का सामना करना पडता है। फिर मर कर वे नरक मे जाते है, जहा उत्कृष्ट असह्य बर्षों तक नरक भव-सम्बन्धी अनन्त वेदना सहन करते है।

नरक से निकल कर त्रियचयोनि में भटकते है। कदाच मनुष्य जन्म पाते है तो भी अनार्य एव घृणितकुल मे उत्पन्न होते है। उन्हें तत्त्वगान नहीं मिलता। वे हिंसा एव व्यभिचार मे आनन्द

मानने वाले होते हैं और मरकर फिर चतुर्गतिरूप ससार में परिभ्रमण करते हैं। इस भीतरागवाणी पर श्रावक को सूक्ष्मदृष्टि से विचार करना चाहिये एवं घोरों के पाप से अज्ञां तक हो सके बचकर मनुष्य जन्म को सफल बनाना चाहिये।

पाँचवाँ-पुञ्ज

(१) प्रश्न—बौद्ध अणुव्रत समझाइये ?

उत्तर—बौद्ध ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। इसमें ब्रह्मचर्य की साधना की जाती है। ब्रह्मचर्य की महिमा अनन्त एवं अपार है। अथर्ववेद का कथन है कि ब्रह्मचर्य सब व्रतों में उत्कृष्ट है। उपनिषद् का फरमान है कि ब्रह्मचर्य से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।^१

जैन शास्त्रों में कहा है *—ब्रह्मचर्य महाव्रतों एवं अणुव्रतों का मूल है, शुद्ध हृदयवाला साधुओं द्वारा संविन ह, जगत की सब पवित्र वस्तुएँ इसके द्वारा पवित्र होती हैं भुक्ति एवं स्वर्ग का सुला द्वार है देवैन्द्रों नरेन्द्रों द्वारा नमस्कृत एवं पूजनीय है तथा जगत में सर्वोत्कृष्ट मंगलमाग है।

एक ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर नील, तप, विनय, समय धर्मा, निर्लोभता गुणि आदि सभी व्रतों गुणों की आराधना हो जाती है। जैसे ही इहलोक-परलोक में धर्म कीर्ति और विश्वास की प्राप्ति

१—छाण्डोग्योपनिषद् ८।४।३

२—प्रश्नध्याकरण ६

होती है । मन निश्चल भाव से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।

(२) प्रश्न—ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ है ?

उत्तर—जननेन्द्रिय इन्द्रियसमूह और मन को गान्धर्व अतिकार दशा को ब्रह्मचर्य कहते हैं^१ अथवा शरीर, मन और बचन से सब अवस्थाओं में सर्वदा एक सर्वत्र मैथुन-त्याग का नाम ब्रह्मचर्य है ।*

प्रश्न ३—मैथुन का क्या मतलब है ?

उत्तर—स्त्री-पुरुष रूप मिथुन (जोड़ा) की कामरागजनित समीचेष्टायें मैथुन हैं^२ । मैथुन अथान् अब्रह्मचर्यं । इसके आठ अङ्ग माने गये हैं^३—(१) स्त्री आदि का स्मरण करना (२) उनके रूप आदि का कीर्तन करना अथवा कामरस उत्पन्न करने वाले ग्रन्थ पढ़ना या गीत गाना (३) स्त्री आदि के साथ क्रीडा करना (तास चौपड होली आदि खेलना) (४) उन्हें रागदृष्टि से देखना (५) उनसे एकान्त में बात करना (६) उन्हें प्राप्त करने का सकल्प—निश्चय करना (७) उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना (८) प्रत्यक्ष सहवास—सभोग करना ।

अब्रह्मचर्य तप, तपस्य एव ब्रह्मचर्य के लिये विनिरूप है, तपस्य-जीवन का भेद करने वाला है प्रमाद का मूल कारण है नीच पुरुषों द्वारा सेवित तथा सत्पुरुषों द्वारा त्याज्य है^४ ।

१—मनोनुशासन ६।५

२—याज्ञवल्क्यस्मृति

३—जैनसिद्धान्त दीपिका ७।८

४—दससहिता

५—प्रश्नोत्तराकरण ४

प्रश्न ४—अज्रह्मचय सेवन मे इतना क्या नुकसान है ?

उत्तर—इससे दो प्रकार का नुकसान होता है—शारीरिक और आत्मिक ।

शारीरिक नुकसान—सुश्रुत (वैद्यशास्त्र) के अनुसार मनुष्य जा खाता है, सबप्रथम उसका रस बनता है, रस से रक्त बनता है, खून गाढ़ा होकर मांस का रूप लेता है, मांस से मेण (चरबी) तयार होता है, मेण से हड्डी बनती है, हड्डी से मज्जा (हड्डी का रस) की उत्पत्ति होती है और उसके सार तत्व से वीर्य बनता है^१ । वीर्य सभी धातुओं का राजा एवं सारभूत पदार्थ है । इसके पुष्ट रहने से शरीर पुष्ट रहता है और क्षय होने से शरीर नष्ट-तेजहीन हो जाता है । अज्रह्मचय सेवन से वायनाश अवश्य होता है अतः यह शारीरिक नुकसान करने वाला है । इसके सिवाय अति मैथुन से शरीर मे क्षय प्रमेह आदि भयकर रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं ।

आत्मिक नुकसान—गौतम स्वामी के प्रश्न पर भगवान ने फरमाया कि^२ जिस प्रकार रूई से या बूर से भरी हुई नली मे तप्त-लोहे की सलाई डालने से रूई का तथा बूरे का नाश होता है, उसी प्रकार कामाचार करने वाला स्त्री यानि मे रहते हुए जीवों की घोर हिंसा करता है । ये जीव सभी पञ्चेन्द्रिय है और इनकी संख्या नव लाख मानी गयी है (जो पुत्र-पुत्री आदि उत्पन्न होते है वे इन्ही मे से

१—रसादूरस ततोमासं मासाद्मद प्रजायते । मेणसोऽस्थिनसोमग्ना, मज्जातोऽगुरुमभव (सुश्रुत) ।

२—भगवती २।५

जीवित रह कर होने हे) इसके मियाय समुन्दिम जीव तो एक बार के भोग से अमाव्य मारे जाने हैं ।

आधुनिक कामबिधान (साइस आफ सेक्स) के अनुसार वीर्य में अनेक पुबोज मान गये है (जो अणुबीदान यान स घूमने हुये तजर भी मान है) । इन्हीं पुबोजों में से कोई एक स्त्री बीज के साथ मिलकर गम रूप में स्थित होता है। एक बार के स्त्री-वासग में २० करोड स ५० करोड तक पुबोज वीर्य के साथ मनुष्य के गरीर से निकलता है, किन्तु योनि मार्ग की गर्मी से तटफगाकर मर जाते हैं ।

शास्त्राय और धनाधिक, दोनों ही मान्यताओं के अनुसार अत्र ह्यचय-मवन म धारहिता है, और नृत्तां द्विता है वहां आत्मिक-नुकसान स्पष्ट है ही । इस रहस्य को समझकर विज्ञानों को अवसावय का सवधा त्याग कर देना चाहिये ।

प्रश्न ५—गृहस्थ अग्रह्यर्ष्य का सवधा त्याग कसे कर सकता है ?

उत्तर—सवधा त्याग न कर सफने के कारण ही उत्तरे लिये स्वप्नार-मनापन्नत कहा गया है । उमे जीवन मर के लिये पस्त्री का परित्याग करके स्वप्नो मे ही संतोष करना चाहिए आर्षात् अग्रह्य घय सेवन की मर्यादा करना चाहिये । (श्राविका के लिये परपुण्य का त्याग एव स्वपति की मर्यादा होती है ।)

प्रश्न ६—स्वप्त्री (स्वपति) क विषय म मर्यादा कसे होती है ?

उत्तर—इस प्रकार हो सकती है । जमे—नि म सहवास न करना एक रात में दो बार ससग म करना पञ्चतिथियों का परित्याग करना तथा स्त्री गर्भवती होने के बाद जब तक बालक स्तन-पान करे वहाँ तक समय से रहना ।

ऐसे म्वहत्री-सम्बन्धी अग्रहचय को मर्यादित करते करते जब कामपिपासा शान्त हो जाय जब, अपनी पत्नी (पति) की सम्मति से सदा के लिये ग्रहचारी बन जाना चाहिये ।

प्रश्न ७—दिन का मैथुन अगुम है^१, गर्भवती स्त्री के साथ भोग करने से गम का नाश होने की संभावना है एवं स्तन पान करने वाले बालक की विद्यमानता में भोग करने से दूसरा गम रहने पर दूध आना बन्द हो जाता है, उससे बालक को बूट होता है । किन्तु एक रात में दो बार तथा तिथियों का विनियोग निषेध करने का क्या हेतु है ?

उत्तर—एक बार भोग करने के बाद बारह मूह्न तक स्त्री योनि सञ्चित रहती है^२ उसमें उत्कृष्ट नक्षत्र सशो मनुष्य एवं असख्य असंज्ञी मनुष्य^३ उत्पन्न हो सकते हैं ।

बारह मूर्हत के अन्दर दूसरी बार भोग करने वाले के इन सभी जीवों की हिंसा का पाप लगता है । इस हेतु से रात को दो बार भोग करना निषिद्ध है ।

द्वितीया पंचमी अष्टमी एकादशी, चतुदशी इन पाँचों तिथियों में भोग करने से दुर्गति का बंध पड़ता है । कारण यह है कि देवता नारकी एवं असख्य वय की धातु वाले युगलिक जब छ मास आयु शेष रहती है उस समय परमव की आयु बाँधते हैं तथा सख्यात वय की सौपक्रम

१—चरक संहिता ५।२२

२—भगवती २।५

३—प्रजापतापद १ मनुष्याधिकार

आयुवाले मनुष्य त्रिषष्ठ तीसरा नौवां सताईसवां आदि भाग आयु शेष रहने पर अथवा अन्तमूहृत आयु शेष रहने पर अगले जन्म सम्बन्धो आयु बाधते है ।

दूज आदि पाँचों त्रिषिया तीसरे भाग में आती है (जसे-तीज-चौथ इन दो भागों के जाने पर तीसरे भाग में पचमी आती है । इसी प्रकार अष्टमी एकादशी, चतुदशी एव दूज भी) । समस्त पूर्वाचार्यों ने इसीलिये इन त्रिषियों में अन्नह्यचयादि पापों से बचकर धमध्यान करने पर विशेष बल दिया है ।

मनुस्मृति अ० ३।४५ ४६ ४७ में भी पवत्रिषियों (८ १४ १५) में तथा ऋतुकाल (रजोदर्शन से सोलह रात्रियाँ) की दस रात्रियों के सिवा अन्य रात्रियों में स्त्री सेवन का निषेध किया गया है ।

प्रश्न ८ अन्नह्यचय का त्याग धावक कितने करण-कितने योग से करता है ?

उत्तर देव-देवी के साथ दो करण तीन योग से त्याग करता है किन्तु मनुष्य मानुषी एव तिर्यञ्च तिर्यञ्ची के साथ एक करण एक योग से ही त्याग करता है (उनके साथ केवल अपने शरीर द्वारा मैथुन सेवन नहीं करता), क्योंकि वह अपने पुत्र-पौत्रादि का वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ता है तथा गाय मत्त आदि त्रिषुञ्चों को गर्भधारण करवान के लिये समोग में प्रयुक्त करता है ।

प्रश्न ६ देवी तिर्पठचो ष साय अन्नहचयं सेवन का प्रसङ्ग वसे सम्मत्र हो सकता है ?

उत्तर कामविह्वलता के आगे बुद्ध भी असम्भव नहीं । शास्त्रों में कहा है कि कामविह्वल देवता मन्त्र का रूप बनाकर स्वयम्भूरमण समुद्र की मछलियों के साथ भी भोग कर लेता है* । मनुष्य मानुषी के साथ देवी देवताओं की काम क्रीडा के उपाहरण अनेक ग्रंथों में प्राप्त है तथा पशुओं के साथ मनुष्य मानुषी का अन्नहचय सेवन तो आज भी कई जगह मुनन को मिलता है । अतः धावक स्व-स्त्री के सिवा इन सभी का का त्याग करता है ।

१० प्रश्न—स्वदार सतोष व्रत की रक्षा के लिये धावक को धीर क्या करना चाहिये ?

उत्तर—पाच अतिचारों से बचते रहना चाहिये । यथा १ इत्वरिक्परिगृहीतागमन २ अपरिगृहीतागमन ३ अनंगक्रीडा ४ पर विवाह करण ५ कामभोग-तोषामिलाप ।

१ मेरे हा परस्त्री का त्याग है—ऐसे सोच कर किसी स्त्री को धन आदि देकर कृत्रिम समय के लिये अपने पास रखना एव उसे अपनी मानकर उसके साथ स्वस्वी वत्-व्यवहार करना इत्वरिक्परिगृहीतागमन अतिचार है ।

२ विवाहित सौहागिन स्त्री को छोड़ कर शेष धरणा, कुवारी वन्या, विधवा कुलवधु आदि से गमन करना अपरिगृहीतागमन अतिचार है । उक्त काय करने वाला-ऐस सोच लेता है कि मैं तो पर

स्त्री का त्याग किया है । बेश्या स्वनन्त्र है, कुंवारी-ब्या कर्मोत्र
 किमी को स्त्री है ही नहीं और बिधवा पतिविहीन है, अतः इन्से
 साय गमन करने से घेरे परस्त्री त्याग के घन मं क्या गेय है । दे
 कामान्ध व्यक्तियों के कुतब है । वास्तव म परस्त्री का
 ने अपनी स्त्री के सिवा जगत की सभी स्त्रियों का त्याग
 है । अपरिगृहीतागमन का कश्यो ने यह अय मो किया है
 होने से पहले अपनी स्त्री से भी (चाहे सगपन ही
 नहीं करना चाहिये ।

इत्वरिकपरिगृहीतागमन व अपरिगृहीतागमन
 आगर सलाप आग्निगन-कुचमदन अघर धुम्बन
 से पहले हाने वाली क्रियाओं का ग्रहण किया
 करने से तो अतिचार न रहकर अनाचार हो
 जाता है । तत्व यह है कि थावक का पर
 आदि भा नहीं करना चाहिये ।

३ काम सेवन के जो प्राकृतिक अंग है
 अगो से काम-क्रीडा करना अनङ्गक्रीडा
 मृनिहा, बन्ध एव चम आदि की पुनः
 हस्तकम एव नपु सक गमन भी इसी
 काय मोहादगाक, विषयवचक एवं
 गये है ।

४ अपने या परिवार के
 विवाहकरण अतिचार है । विद

प्रेरणा है । अपने श्रावक बालिकाओं के विवाह तो श्रावक को व्यवहार के नाने करने ही पड़ते हैं लेकिन दूसरों के वैवाहिक ममता में पड़ना उन्हें नहीं बलपना । इस कार्य में दोनों प्रकार से नुस्सान है । द्रव्य से मनचाहा जोडा न जुड़ने से वर वधू जोदनभर विवाह करने वाले को कोसने है और भाव से अग्रह्राचय की वृद्धि होने से पाप लगता है ।

कई लोग श्रावक दान में धर्म पुण्य मानने हुए हर एक के विवाह को दलाली करके खुग होते हैं किन्तु यह उनके अनान का परिणाम है । ५ पाँच इन्द्रियों के विषयों—(शब्द रस-गंध रस-स्पर्श) में विशेष आसक्त होना कामभोगतीव्रामिलाप अतिचार है । तत्त्व यह है कि श्रावक विनिष्टविरति वाला होता है । उसने काम भोग का अमिलापा को मन्द करने के लिये स्वप्नार सतोपग्रत लिया है न कि उसे तीव्र करने के लिए । अतः उसे कामरस भरे गाने न सुनने चाहिये, स्त्रियों के मग्न चित्र एवं कामोत्तेजक नाटक सिनेमा न देखने चाहिये । इत्र आदि सूधने में आसक्त न होना चाहिये । दूध दही, घी, मिठाई आदि पौष्टिक पदार्थ अधिक न खाने चाहिये तथा रसायन, स्तम्भनगुटिका आदि बाजोकरण (कामोद्दीपक) औषधियाँ नहीं लेनी चाहिये और विषमो की तरफ आवृष्ट करने वाले वस्त्र आभूषण, गम्या आसन आदि का सेवन तथा स्त्री स्त्रो स्त्रो का आलिङ्गन न करना चाहिये । कितना लिया जाय । श्रावक के लिए वे सभी काय यजनीय है, जिनसे कामवासना को वृद्धि हो ।

प्रश्न ११—परस्त्रीगमन का विशेष निषेध किसलिए किया गया ?
स्वस्त्री गमन भी तो अब्रह्मचर्य सेवन ही है ।

उत्तर—अब्रह्मचर्य सेवन होन पर भी बहुत बड़ा अन्तर है ।
स्वस्त्रीगामी का लक्ष्य अब्रह्मचर्य को सीमित करके ब्रह्मचर्य की तरफ
बनाना है एक परस्त्रीगामी का लक्ष्य विषय-तृष्णा को बनाने हुए
ब्रह्मचर्य को नष्ट भ्रष्ट करना है ।

सद्धान्तिक दृष्टि से स्वस्त्रीगामी मनुष्य केवल विवाहित स्त्री
सम्बन्धी मैथुन सेवन की निंसा का भागी होता है और परस्त्रीगामी
अनेकों स्त्रियों के नव नव लाग्य सजी पंचेन्द्रिय प्राणियों का घातक
होता है ।

व्यवहारिक दृष्टि से स्वस्त्रीगामी मनुष्य को इज्जत से जीना है
और परस्त्रीगामी कुत्तों की श्रेणी में गिना जाता है । महर्षि विशिष्ट
का कथन है कि परस्त्री का ललाट पट्ट चौथे क बादवत् कलङ्क लगाने
वाला है ।^१ महर्षि मनु का फरमान है कि आयुष्य जोर वरु को क्षीण
करने के लिये परस्त्रीगमन से बड कर दूसरा कोई कम नहीं है ।^२
गौतम बुद्ध की वाणी है कि परस्त्रीगमन से चार बातें मिलती हैं^३,
(१) अपयग (२) निद्रानागक चिन्ता (३) दण्ड और (४) नरक ।
जैन मुनियो न कहा है कि परस्त्री को बुरी नजर से देखने वाले जब
नरक में जाते हैं तब बड़ा अग्नि में गम की हुई लोहे की सलाइयाँ

१—योगवासिष्ठ

२—मनुस्मृति ४।१३४

३—धम्मप,

उनकी आँखों में डाली जाती हैं तथा जो परस्त्री का आलिंगन करने वाले हैं उ हू वहा अग्निवण लोह-युतलियों से आलिंगन करवाया जाता है। अस्तु !

वेदपा भी परस्त्री के समान अत्यन्त निन्दनीय एवं परित्तरणीय मानो गई है। बड़े-बड़े धनकूबेर इसके जाल में फसकर बरबाद हो गये एवं रो रहे हैं। इसका प्रेम व्यक्ति के साथ न होकर मात्र धन से होता है। चाहे कोडा भी क्यों न हो, धन होने पर वह उसकी भी गुलामी करने लगती है। सदाचारी पुरुषों को परस्त्रीगमन का त्याग अवश्य होना ही चाहिये।

प्रश्न १२ पर विवाह करने का नियम तो अतिचारों में आ गया लेकिन अपने विवाह के विषय में श्रावक को क्या करना चाहिए ?

उत्तर—वचन में विवाह न करना चाहिए। कारणवश हो जाय तो जब तक स्त्री ऋतुमती (रजस्वला) न हो, तब तक ब्रह्मचर्य पालना चाहिये^१। एक स्त्री की विद्यमानता से दूसरा विवाह न करना चाहिये (चाहे पूर्वकाल में बहुपत्नी प्रथा रही हो, आज के युग में यह उचित नहीं लगती।)

वृद्धावस्था में (स्त्री का वियोग होने पर भी) विवाह नहीं करना चाहिये। इसमें कई कई मुसीबतें हैं। अमे—प्रथम स्त्री के बच्चों को प्रायः दुःख की सम्भावना रहती है। वृद्ध पति से सतुष्ट

न होन पर स्त्री व्यभिचारिणी हो जाती है तथा बृद्ध पति के घर में हुक्म शाय पत्नी का ही रहता है ।

वास्तव में पुरुष को दुमारा विवाह करना ही नहीं चाहिये । कुलीन विधवा स्त्रियों की तरह उन्हें भी जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये । स्त्रियों के जैसे एक पतिव्रत धर्म है, पुरुषों के भी उसी प्रकार एक पत्नीव्रत धर्म होना चाहिये ।

आजकल कई जैन माई विधवा विवाह खोलने की सोच रहे हैं लेकिन समझ में नहीं आता कि यह सोचना उनके लिये कहीं तक गोमास्पद है । जब कि उनके भगवान् तो जगत को ब्रह्मचर्य की तरफ खींच रहे हैं और वे अपनी विधवा माँ बहन बेटियों को ब्रह्मचर्य की ओर अप्रसर होने की प्रेरणा दे रहे हैं ।

पश्चिमी देशों के लोग तो (चाहे वे चन्द्रलोक में जाने की तैयारी करें एव महावनानिक हों) ब्रह्मचर्य धर्म क वारे में प्रायः कुछ सोचते ही नहीं । वे तो नई नई पत्नियों एव नये नये पति बनान में ही अपना महत्त्व समझते हैं । देखिये १—

भ्यूपाष में एक स्त्री ने सात वय में पाँच पति बनाये । छठे विवाह के समारोह में छोड़े हुए पिछले चार पति उपस्थित थे । एक अस्वस्थता के कारण नहीं आ सका, किन्तु उसने एक सुन्दर भेंट भेजी ।

अमरीका में एक विवाह हुआ जिसमें वर ७२ वय का था एवं स्त्री ७१ वय की थी । यह विवाह पुरुष का नौवाँ और स्त्री का बारहवाँ था ।

१—आयुर्वि नामक गुजराती समाचार पत्र के माधुर से ।

सुसेल्स के एक पुरुष ने तेरह विवाह किये एव नई नई बाराह स्त्रियाँ की। तेरहवीं बार एक सुन्दर स्त्री से विवाह किया किन्तु पीछे पता लगा की यह विधवा पहली बार व्याही थी वही मेरी बेन्दीस थी।

स्पेन को एक स्त्री ने तीन वर्ष में तेरह विवाह किए जिनमें हसी, उमराव कारखानेदार, दूकानदार मोची कृषक, जोहरी, सेनापति, नाई एव दलाल आदि पति बनाये।

अमरीका में एक व्यक्ति मरा जिसने सत्रह विवाह किये एव तोड़े। उसकी दृष्टि पूरे वास विवाह करने की थी।

उपर्युक्त घटनाओं से स्पष्ट होता है कि पश्चिमी देशों के लोगों को ब्रह्मचर्य के महत्त्व का ज्ञान नहीं है किन्तु भारतीय आशय चाहे जन है या वैदिक, सभी ब्रह्मचर्य को श्रेष्ठ धर्म मानते हैं। उनके लिये पुनर्विवाह या विधवा विवाह का समर्थन करना उचित नहीं लगता है।

प्रश्न १३ क्या कन्या विक्रय एव वर विक्रय करना श्रावक के लिये उचित है ?

उत्तर—श्रावक के लिये तो क्या, किसी के लिए भी उचित नहीं है। धन का लेन देन करके जो विवाह किया जाता है उसे आसुरी विवाह कहा है^१। कन्या का घोडा भी धन लेन वाला रोरय नरक में जाता है एव बहुत वर्षों तक मल मूत्र का भोजन करता^२।

१—मनुस्मृति

स्मृति

घन के लोभी माता पिता आदि घर कन्या की योग्यता पर ध्यान नहीं देते। जहाँ अधिक पसा मिलता है वही विवाह करने की चेष्टा करते हैं। ऐसा करने से बहुत से अयोग्य जाह जूड़ जाते हैं एव बालक-बालिकाएँ दुःखी होकर जीवन भर अपने माँ बापों की बसते हैं। इसमें ही बम नहीं हाती। कई बहूओं को दौरे आन लगते हैं, कई बेटे घर से निकल जाते हैं। कहीं-कहीं आत्महत्या की भी नोंदत आ जाती है।

पुरान शास्त्रों में प्राय कन्या विक्रय का बणन मिलता है किन्तु आजकल घर-विक्रय अधिक होन लगा है। चाहे कन्या विक्रय हो चाहे घर विक्रय हो, दोनों ही महापाप हैं। घन लेकर विवाह करना एक प्रकार से सतान विक्रय है यानि सतान की बेचना है—श्रावक को इस कार्य का विल्कुल त्याग कर देना चाहिए।

छठा पुञ्ज

(१) प्रश्न—पाचवें अणुव्रत में श्रावक को क्या करना चाहिये ?

उत्तर—परिग्रह का परिमाण करके सतोषवृत्ति बढानी चाहिये।

(२) प्रश्न—परिग्रह का क्या अर्थ है ?

उत्तर—मूर्च्छा—ममत्त्व व आसक्ति का नाम परिग्रह है *। विश्व में परिग्रह जैसा जाल एव प्रतिबन्ध दूसरा कोई नहीं है। इसके कलि-

करण्ड, अनथ, अगुप्ति अमुक्ति, तृष्णा, आसक्ति असंतोष आदि अनेक नाम कहे गये हैं ।

(३) प्रश्न—परिग्रह का अर्थ तो सामान्यतया धन वा यदि पदार्थ ही माना जाता है—यह कैसे ?

उत्तर—मूर्च्छा (जड चेतन) पदार्थों पर ही होती है । इसलिये पदार्थों को परिग्रह कहा जाता है । पदार्थ बाह्य आभ्यन्तर दो प्रकार के होने से परिग्रह के भी दो भेद हो जाते हैं—बाह्यपरिग्रह और आभ्यन्तर परिग्रह ।

बाह्यपरिग्रह नौ प्रकार के है— १ क्षेत्र २ वास्तु ३ हिरण्य ४ सुवर्ण ५ धन ६ धान्य ७ द्विप ८ चतुष्पद ९ कुप्य ।

आभ्यन्तर परिग्रह के चौदह भेद हैं— १ हास्य हसना, २ रति असमय मे अनुराग, ३ अरति समय मे उदासीनता ४ भय भयानक वस्तुओं को देखकर डरना ५ शोक इष्ट के वियोग में दुःखी होना, ६ जुगुप्सा अहचिकर वस्तु पर घृणा, ७ क्रोध गुस्सा, ८ मान अहंकार, ९ माया छल कपट १० लोभ भौतिक पदार्थों मे आसक्ति, ११ स्त्रीवेद पुरुष के साथ सगम करने की इच्छा, १२ पुरुषवेद स्त्री सगम की इच्छा, १३ नपसकवेद-दोनों के साथ सगम की इच्छा १४ मिथ्यात्व विपरीत ध्यान ।

(४) प्रश्न—थावक इन सब का त्याग कैसे कर सकता है ?

उत्तर—सबका त्याग तो नहीं कर सकता, किन्तु कुछ कुछ तो

१ प्रश्नव्याकरण० ज० ५

२ बृहत्संहिता १ भाष्य गाथा ८३१

कर हो सकता है। जमे—आम्यन्तर परिग्रह में मिथ्यात्व का सचया त्याग कर सकता है और शेष हास्य आदि को छोड़ने का यथासंभव अभ्यास कर सकता है। तथा बाह्य परिग्रह की चीजें तो बहुत ही स्पूण हैं अतः उनका यथाशक्ति त्याग करना विशेष कठिन है ही नहीं।


(५) प्रश्न—बाह्यपरिग्रह की त्यागविधि जरा समझाने की कृपा कीजिए ?

उत्तर—क्षेत्र आदि बाह्य पदार्थों के त्याग— इस प्रकार किये जाते हैं।

(१) क्षेत्र—धान्य आदि उत्पन्न करने की भूमि को क्षेत्र (खेत) कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है—सेतु और केतु। अरहट नहर कुआँ आदि कृत्रिम उपायो से सींची जाने वाली भूमि को सेतु एवं बरसात से सींची जाने वाली भूमि को केतु कहते हैं। क्षेत्र सम्बन्धी दोनो ही प्रकार की भूमि की मर्यादा करना कि इतने बीघा या एकड़ से अधिक जमान अथवा इतने खेतों से अधिक खेत नहीं रखूंगा।

(२) वास्तु—घर आदि ढकी भूमि वास्तु है। घर तीन प्रकार के होते हैं—१. खात—अर्थात् खोद कर बनाये हुए भूमिगृह (मुठारा) आदि।

२. उत्सृत—जमीन के ऊपर बनाये हुए महल (मजिलों वाले) प्रासाद (गिखरबघ) अगला (वाग के बीच में बन हुए) आदि।

(३)  गृह के ऊपर बनाये हुए मन्लारि

घर आदि को सस्त्रा या कोमल के आधार पर मर्यादा रखना चाहिए।

(३४) हिरण्य-सुवर्ण—हिरण्य का अर्थ चाँदी है और सुवर्ण का अर्थ सोना है। ये दोनों ही दो प्रकार से रखे जाते हैं—घड़े (आमूषण बतन आदि), बिना घड़े हुए (सिल्ले-पासे आदि)। इनके रखने के लिए दोनों प्रकार के हिरण्य सुवर्ण रखने का ध्यान रखना चाहिए।

(३५) धन—पसा, आना, रुपया गिन्नी, नोट आदि सिक्का तथा हीरा वना, माणक मोती आदि जवाहरात को रखा जाता है। नकद धन रखने का ध्यावक को यथाशक्ति करना चाहिए।

(३६) धान्य—गेहूँ चना, बाजरो, मूँग, मोठ मकई, ज्वार चावल, सरसो तिल, गुड, शक्कर, खोड, तेल एवं घी आदि प्रकार के खाद्य पदार्थ धान्य में गिने जाते हैं। धान्य के रखने का संप्रह नहीं करना चाहिए क्योंकि इनमें जीवोत्पत्ति होने की संभावना रहती है।

धान्य आदि के व्यापार से भी ध्यावक को बचाने में सहायता चाहिए, कारण जीव इसाके साथ साथ इस व्यापार में भी का पाप भी विलोप लगता रहना है। धान्य का व्यापारी सोचना है कि दुष्काल पड़े तो धान्य का भाव तेज होकर नफा मिले, अन्तु! धान्य आदि के संप्रह को ध्यावक को बचाने में सहायता चाहिए।

७ द्विपद—दास दासी, नौकर-चाकर मुनीम-गुमास्ता स्त्री पुत्री एव पारिवारिक मनुष्य द्विपदपरिग्रह है तथा तोता-मैना कबूतर आदि पक्षी भी दो पर वाले होने से इसी में माने गए ताता मैना आदि पक्षियों को रखना एव पालना श्रावक के लिए बत है क्योंकि इस काम में स्वतन्त्र विहार करने वाले पक्षियों एक प्रकार से बंद हो जाती है ।

अण्डा उत्पन्न करने के लिये मुर्गी-पालन का धंधा तो महापाप न श्रावक इसे कर ही कैसे सकता है ।

दास दासी आदि रखने की भी श्रावक को मर्यादा करनी है । अधिक नौकर होने से स्वयं प्रमादो बन जाता है । दूसरी काम करते समय खुद जितनी यत्ना रख सकता है उतनी नौकर नहीं रखता ।

स्त्री-पुत्र आदि का परिग्रह भी श्रावक को संकुचित करना है । जैसे—एक से अधिक स्त्री नहीं रखूंगा । इतने पुत्र-पुत्रियाँ के बाद श्रेष्ठचय पालूंगा । (अगर लोग स्वयं मर्यादा कर लें तो नार को परिवार नियोजन सम्बन्धी आन्दोलन चलाने के लिये यहाँ रुपये खर्चन को एव लूप आदि के घृणित प्रयोग चलाने की रत ही न रहे) ।

८ चतुष्पद —गाय भस, ऊट, घोडा-हाथी, बकरा, बानर भेड़, 1-चोता सिंह आदि चार पर वाले पशु चतुष्पद कहलाते हैं ।
 1-कौ को चतुष्पद न रखन चाहिए

वर्षोंक जितने अधिक पशु होंगे उतनी ही घास चारा आदि की व्यवस्था अधिक करनी पड़ेगी एवं आरम्भ समारम्भ बढ़ेगा ।

श्रावक यदि राजा हा एवं राज्य-व्यवस्था के अनुसार उसे होशो घोड़े सिंह चीता आदि रखन पड़ें तो उनके वध, बधन व भक्तपान-विच्छेद तो नहीं हो रहे, यह सजगता से ध्यान में रखना चाहिए ।

दो-तीन एवं चार पहियों वाले मोटर-साइकिल रिक्शा आदि वाहनों का परिमाण भी द्विपद चतुष्पदों के साथ ही कर लेना चाहिए ।

६ कुप्य —सोना चादी के सिवा तांबा, लोहा, काँसा पीतल आदि सभी धातुएँ या घरेलू सामान, जो पिछले आठ भेदों में नहीं आता, कुप्य-परिग्रह कहलाता है । श्रावक को इसका मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिए ।

प्रश्न ६ इस व्रत के अतिचार समझाइए ?

उत्तर —पाँच अतिचार माने गए हैं ; यथा—१ क्षेत्र वास्तु के प्रमाण का अतिक्रमण करना २ द्विरण्य मुक्कण के प्रमाण का अतिक्रमण करना ३ घन-धातु के प्रमाण का अतिक्रमण करना ४ द्विपद चतुष्पद के प्रमाण का अतिक्रमण करना और ५ कुप्य के प्रमाण का अतिक्रमण करना ।

व्रत धारण समय क्षेत्रादि रूप परिग्रह का जो प्रमाण किया है, व्रत की अपेक्षा रखने हूये उस प्रमाण का अतिक्रमण करना अतिचार है । जैसे—जिसी न एक खेत उपरान्त रखन का त्याग किया, कालान्तर में उसके लगता दूसरा खेत लेकर उसी में मिला लेना एवं

दोनों को एक मान लेना । ऐसे ही निवृत्तवर्ती घर सरीद कर बीच की दीवार निकलवा कर दो घर का एक घर कर लेना । चाँनी-सोना अधिक होने पर सिला-यासा अथवा बतनी-आभूषणों में मिलाकर नियमित सख्या को पूरी करके मन को मना लेना तथा धन अधिक हो जाने पर पुत्र-पुत्रवधू आदि के नाम से जमा करके अथवा दान को मुरलिन समझ लेना ।

वास्तव में जिस भावना से परिग्रह का प्रमाण किया गया है पालने समय बनी भावना रखनी चाहिये । लोभवत्ता गलियाँ निकाल कर मन को घसीपा देना अतिचार है । धन इच्छाओं को सीमित करने के लिए धारा जाता है, गलियाँ निकालकर गड़बड़ करने के लिए नहीं ।

प्रश्न ७—इच्छा तुष्णा एवं स्पृहा में क्या अन्तर है ?

उत्तर —अभावपूर्ति की भावना इच्छा है । धन बढ़ाने की भावना तुष्णा है और आवश्यक वस्तु की इच्छा स्पृहा है । श्रावकों का इच्छा-तुष्णा पर नियन्त्रण करना चाहिए । मगधान ने कहा है कि वस्तु का लाभ होने से लोभ घटता नहीं उल्टा बढ़ता है । आग में लकड़ियाँ पड़ेंगी त्वाँ-स्वों वह अधिक तेज होगी । देखिये—भूखा केवल खली-सूखी रोटी की इच्छा करता है । रोटी मिलने पर कपड़े की स्पृहा होन लगती है । कपड़ा मिला तो रहन के लिये मकान चाहिए । मकान हो तो सुन्दर स्त्री चाहिए । वह मिल जाय ता सन्तान (पुत्र-पुत्रियाँ) चाहिए । फिर पुत्रवधू और पोते-पटपोते चाहिए और हाथ के खर्च के लिए धन चाहिये । अब धन बमाने के

लिए कितने कष्ट उठाने पड़ने हैं, यह बात तो किसी से छिपी हुई है ही नहीं ।

प्रश्न ८—योग कितनी तुम्हा क्या रखते हैं ?

उत्तर —दुनियाँ में वस्तु थाड़ा है और जीवों की तुम्हा अनन्त अपार है । एक एक वस्तु पर अनेक व्यक्ति ममत्व बनाए बैठे हैं । जैसे—सेठ कहता है कि घर मेरा है सठानी कहती है—मेरा है । छोटे छोटे बच्चे, जिन्हें पूरा बोलना भी नहीं आता उनको भी अपनी तुतलाती माया में कहते सुना जाता है कि घर तो हमारा है । अरे, यह तो हुई मनुष्यों की बात किन्तु उस घर में रहने वाले गाय भैंस घोड़ा ऊँट यावत् पुत्ते बिरली चूह एक चिट्ठी तक के जोव भी उसे अपना मान रहे हैं, अस्तु !

प्रश्न ९—दुनियाँ सुखी कैसे बन सकती है ?

उत्तर —माह ममत्व एवं मग्रहवृत्ति घटने से सुख हो सकता है । आज एक ओर करोड़ों व्यक्ति मूले मर रहे हैं एवं एक ओर कोठों में पड़ा अनाज सड़ रहा है । एक तरफ लोम नगे फिर रहे हैं और दूसरी तरफ गोगामों में कपड़े की गाँठें भरी पड़ी है । एक तरफ लाखों गरीब गहरों में सड़को पर पड़े हैं और दूसरी तरफ बड़े-बड़े महल खाली पड़े हैं । अगर लोगों की मग्रहवृत्ति कम हो जाय तो काफी हद तक दुःख मिट सकता है ।

सरकार भी प्रजा का शोषण करने में दिनो दिन वृद्धि करती जा रही है । पुराने प्रयोगों के अनुसार चक्रवर्ती लाभ (नफा) का बीसवाँ भाग प्रजा से लेते थे । यामुदेव बलदेव दसवाँ भाग लेते थे

और साम्राज्य राश्ट्र छुटा भाग लेते थे । किन्तु आज तो सरकार पांच लाख ब नफे में ३ लाख ७० हजार १६१ तक सन का दावा कराने ली है । इसका नतीजा यह निकला है—व्यापारी बग दो-नो खात रखने लगा, काम छिपाने लगा एव रिश्वतों दे देकर राज्यमपारियों को नीतिभ्रष्ट करके अपना काम बनाने लगा । सरकार के विशेष काम न हुआ और व्यापारियों ब मन म अमन बन न रहा ।

प्रश्न १०—तो फिर ऐसे जमाने में आवक क्या करे ?

उत्तर —तेरापस के अज्माचाय श्री बाल्गुणी करमाया करते थे कि खाने को चाहिए रोटी और पहनने को चाहिए कपडा । करोडपति भी हीरों-पन्ना को तो नहीं खाते फिर क्यों अधिक हाथ हाथ करनी चाहिए एव क्यों अघा होकर घन के पीछे दौडना चाहिए ? इन वाक्यों का रहस्य यही है कि जहाँ तक बन सक सीधा-साधा एव सतोपी जीवन जीने की चप्टा करो ।

जय—जमीन को चमडे से मट्टा देना समब नहीं किन्तु व्यक्ति कांटों से बचन के लिये स्वय पैरों में जूती पहन ल—यह समब है । उसी प्रकार आज इस कल्पियुगी-दुनियाँ को सुधार देना कठिन है, किन्तु व्यक्ति यदि चाह तो स्वय ययासमब सतोपी जीवन जी सकता है ।

प्रश्न ११—पुराने जमाने में आवक व्यापार कमे करते थे ।

उत्तर —आनन्द कामदेवादि आवक का इतिहास पढ़ने से मालूम होता है कि उस जमाने में लोग आज की तरह श्रृण लेकर व्यापार में प्रवेश नहीं करते थे । अपनी पूजा भी सारी व्यापार में

नहीं लगाने थे। वे अपने धन को तीन भागों में विभक्त करके एक भाग तो जमीन में (निधानरूप से) रखने थे। एक भाग घर-बार (जमीन वस्त्र आभूषण, गाय घोडा आदि) में लगाते थे और एक भाग से ध्यापार किया करते थे।

तत्त्व यह है कि ध्यापार में आकस्मिक नुकसान होने पर भी निधान से जमी जायदाद देकर भी अपनी इज्जत रख लेते थे। अंग्रेजों की तरह दिवालिया बनने में उन्हें डर आती थी। उनका सिद्धान्त यह था—जाओ लाख (पर) रहो लाख !

सातवाँ-पुञ्ज

(१) प्रश्न—गुणव्रत का रहस्य क्या है ?

उत्तर—पाँच अणुव्रतों के पालन में विशेष गुण—उपकार करने वाले होने से छठा, सातवाँ, और आठवाँ—ये तीन गुणव्रत कहलाने हैं। सब दिशाओं तथा सब पदार्थों सम्बन्धी अत्रत की जो क्रिया निरन्तर आती रहती है—इन सब अत्रतों द्वारा उनमें सकोच होने से आत्मिकगुणों की विशुद्धि एवं वृद्धि होती है अतः यह गुणव्रत माने जाते हैं। (छठाव्रत क्षेत्र से, सातवाँ द्रव्य से व कम से और आठवाँ भाव से आश्रयों का विशेष निरोध करके संवर गुणों की वृद्धि करता है) गुणव्रत धारण करने से कोठे में ढाले हुए धान्य की तरह अणुव्रत सुरक्षित रहते हैं।

(२) प्रश्न—छटा इन समझाइये ?

उत्तर—छटा दिग्ग परिमाणजन कहलाता है। इसमें धावक दिग्गाओं में धान-जान को मर्त्या करता है।

(३) प्रश्न—दिगायें कितनी होती हैं ?

मुम्ब दिगायें तीन हैं—ऊर्ध्वदिगा अथवा (नीची) दिगा और तिरछी दिगा। तिरछी दिगा के मुख्य चार भेद हैं—पूरुष, दक्षिण पश्चिम एव उत्तर। इन चारों के बीच में चार दिगायें मानी गई हैं—अग्निमण, नक्षत्र तिमण वायव्यकाण और ईगानकोण।

मूर्धोदय की तरफ मुँह करके खड़े हुए पुरुष के सामने पूवदिगा है, पीठ पीछे पश्चिमदिगा है दाहिना हाथ की तरफ दक्षिण दिगा है और बाय हाथ की तरफ उत्तरदिगा है। पूर्व दक्षिण के बीच का भाग अग्नि काण है, दक्षिण पश्चिम का मध्यभाग नक्षत्र तिमण है, पश्चिम उत्तर का मध्यभाग वायव्यकाण है और उत्तर-पूरुष का मध्यभाग ईगानकोण है। उक्त विधि से भेद करने पर दिगायें दस हो जाती हैं। इनके गुणनिष्पन्न दस नाम कहे हैं—

१ पूर्वदिगा का अधिष्ठाता देव इंद्र है, अतः इसका गुणनिष्पन्न नाम ऐन्द्रो है।

२ अग्निमण का अधिष्ठाता देव अग्नि है अतः यह आग्नेयी कहलाती है।

३ दक्षिण दिगा का अधिष्ठाता यम देव है अतः इसे धाम्या कहने हैं।

४ नैऋतिकोण का स्वामी नऋत देव है, अतः इसका नाम नैऋति है ।

५ पश्चिम दिशा का स्वामी वरुणदेव है अतः इसे घारुणी कहते हैं ।

६ वायव्यकोण का स्वामी वायुदेव है, अतः इसकी सजा वायव्य है ।

७ उत्तर दिशा का स्वामी सामदेव है अतः यह सौम्या कही जाती है ।

८ ईशानकोण का स्वामी ईशानदेव है, अतः इसकी ऐशानी कहते हैं ।

९ ऊपर का भाग अक्षरमय होना से निमल है अतः ऊर्ध्व दिशा का नाम विमला है ।

१० नीचे का भाग गाढ़ अक्षरमय होने से अधोदिशा का नाम तमा है ।

(४) प्रश्न—दिशाओं का प्रारम्भ कहीं से होता है ?

उत्तर—रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर त्रियलोक के मध्यभाग में एक रज्जु परिमाण लम्बे चौड़े आकाश प्रदेशों के दो प्रतर हैं । ये प्रतर सब प्रतरों से छोटे हैं एव मेरु पर्वत के मध्य प्रदेश में इनका मध्यभाग है । इन दोनों प्रतरों के बीचो बीच गोस्तत्राकार चार चार आकाश प्रदेश हैं । ये आठों आकाश प्रदेश जैन परिभाषा में आकाश के रुचक प्रदेश कहलाते हैं । ये ही रुचकप्रदेश दिशाओं और विदिशाओं की मर्यादा के कारणमूल हैं ।

तत्त्व यह है कि सभी जिगाओ विदिगाओ का प्रादुर्भाव एक प्रदेशों से होता है। पूवादि चारों जिगायें प्रारम्भ में दो आकाश प्रदेशों वितनी विस्तीर्ण (चौड़ी) हैं एवं उत्तरोत्तर दो प्रदेशों की वृद्धि पाती है। वे लोक की अपेक्षा असंख्य प्रदेशों और अनेक की अपेक्षा अनन्त प्रदेशों लम्बी तथा लोक की अपेक्षा इनका आकार मुरझ-महाप्रमाण वाले मदलवत् और अलोक की अपेक्षा गाड़ी की धुरीवत् माना गया है।

चारों विदिगायें आदि से अन्त तक एक प्रदेश विस्तीर्ण हैं एवं दिग्गन्तुमुक्तावली (द्वेद क्रिय हुए मोक्षियों की लक्ष्य) के समान उनका आकार है तथा लम्बी जिगाओं के समान ही हैं। ऊँची-नीची दिगाएँ चार प्रकार की हैं एवं आदि से अन्त तक दो प्रदेश विस्तीर्ण हैं— इनका शेष यणन विदिगाओं के तुल्य है* ।

प्रश्न ५ — जिगाओं की मर्यादा कस की जाय ?

उत्तर — अपने इच्छित-स्मान से ऊँचादि जिगा का परिमाण इस प्रकार करना चाहिये । यथा—

ऊँचदिगा में—वृष्णी पहाड़ों पर, या विमानानि द्वारा आकाश में इतने कोसों से अधिक ऊपर नहीं जाऊगा ।

अधोदिगा में—नूप-बायो या नीचे प्रदेशों में (भारत की अपेक्षा अमेरिका आदि) में इतने कोसों से अधिक नहीं जाऊगा ।

तिरछी दिशा में—पूर्वादि दिगाओं में इतने इतने कोसों से आगे स्वयं नहीं जाऊगा या माल नहीं भेजुगा और न वहाँ से माल मगाऊँगा एवं न पत्र-व्यवहार करुगा ।

इस प्रकार क्षेत्र की मर्यादा करने से पूर्वोक्त पाँचो अणुघटकों में काम यह होता है कि सीमित क्षेत्र से बाहर आगार में रखे हुए हिंसा असत्य आदि पाप भी बढ़ हो जाते हैं ।

इस व्रत की ग्रहण करते समय कई धावक रोगान्त्रि वश या साध्वादि के दशनाथ सामित क्षेत्र से बाहर जाने का आगार भी रखा करते हैं ।

प्रश्न ६— इस व्रत के अतिचार वतलाइये ?

उत्तर—पाँच अतिचार हैं* —(१) ऊर्ध्वदिशाप्रमाणातिक्रम, २ अधोदिशाप्रमाणातिक्रम ३ तिमग्दिशाप्रमाणातिक्रम ४ क्षेत्रवृद्धि ५ स्मृति अन्तर्धान ।

(१ २ ३) अनुयोग—असावधानी से ऊँची नीची एक तिरछी दिशा की मर्यादा का उल्लंघन करना अतिचार है । यदि यह काम जान बूझ कर किया जाय तो अनाचार ही जाता है ।

४ क्षेत्रवृद्धि—एक दिशा का परिमाण घटाकर दूसरी दिशा का बना लेना क्षेत्रवृद्धि अतिचार है । जैसे—किसी ने चारों दिशाओं में ५० ५० कोस क्षत्र रखा है । कारणवश पूर्व दिशा में १० कोस जाने का प्रसङ्ग आने पर मन में इस प्रकार समाधान करें कि पश्चिमदिशा में तो मैं बंधी जाता ही नहीं, अतः उस दिशा के १० कोस इस तरफ गिन लूँगा—ऐम मन को सतोष देकर पूर्वदिशा में ५० कोस से आगे बढ़ना अतिचार है ।

५ स्मृति अन्तर्धान —संदिह हो जाने पर सीमित क्षेत्र से आगे चला जाना स्मृति अन्तर्धान अतिचार है । जैसे—किसी के पूर्व

दिगा मे सौ कोस क्षेत्र रखा हुआ है लेकिन जाते समय स्मृतिभ्रंश होने से यह सदिह हो आय कि मने ५० कोस रखे थे अथवा १०० कोस रखे थे । ऐसा सशय होने के बाद उसे ५० कोस से आगे जाना नहीं कल्पता एव जाने से उक्त अतिचार लगता है ।

आठवाँ पुञ्ज

प्रश्न १—सातवें व्रत में धावक को क्या करना चाहिये ?

उत्तर —सातवा उपभोग परिभोग परिणाम व्रत है । इसमें उपभोग परिभोग सम्बन्धी वस्तुओं का मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिये । यह त्याग दो प्रकार से होता है भोग से और कम से । भोग से त्याग करने का अर्थ है—उपभोग परिभोग की वस्तुओं की मर्यादा करना तथा कर्म से त्याग करने का मतलब है—उक्त वस्तुओं की प्राप्ति के लिये किये जाने वाले व्यापारों की मर्यादा करना ।

प्रश्न —२ उपभोग-परिभोग की वस्तुएँ कौन कौन सी हैं ?

उत्तर —जो एक ही बार भोग में आती है, वे रोटी, पानी, आदि खाने-पीने की चीजें उपभोग कहलाती हैं एव जो बार बार भोग में आती हैं—वे स्थान मन्त्र, भूषण, स्त्री, वाहन शयन, आसन आदि चीजें परिभोग कहलाती हैं । इन दोनों प्रकार की वस्तुओं के शास्त्र में छत्तीस भेद किये गये हैं ।

प्रश्न ३—छत्रवीस वस्तुओं का विवेचन कीजिये ?

उत्तर—छत्रवीस वस्तुओं में प्रथम ग्यारह शरीर की स्वच्छता, सुरक्षा एवं विभूषा के लिए हैं, बीच की दस स्नान पान सम्बन्धी हैं, फिर तीन मृग्य सुविधा के लिये हैं एवं दो उपसंहारान्तरक हैं।

इनका विवेचन नीचे पढ़िये

(१) प्रात उठते ही मनुष्य अङ्गल जाना है एवं आकर हाथ मुखादि धोता है। फिर उन्हें पोंछने के लिये तौत्रिया-रूमाल आदि की आवश्यकता होती है, अतः सर्वप्रथम उत्सर्गविधि विधि अर्थात् स्नान की विधि (प्रकार) का कथन है—इसमें देगी विदही तथा रेगमी, कुं आदि रूमाल, गमछों की मर्यादा करनी चाहिये।

(२) हाथ आदि पोंछने के बाद दाँत साफ किए जाते हैं, अतः दूसरी उत्सर्गविधि कही है। इसमें दानुन (नीम आदि की) मर्जु पेस्ट टूथपाठडर, नमक, रास कोयला आदि दाँत साफ करने के पदार्थों की मर्यादा करनी चाहिये।

(३) दानुन करने के बाद सिर के बाल धोये जाते हैं। पुराने जमाने में आँबला आदि के फलों से सिर धोने का रिवाज था (आजकल प्रातः साबुन काम में ली जातो है), अतः तीसरी फलविधि कही है। इसमें आँबला अरोळा मेट साबुन आदि की मर्यादा करनी चाहिये।

(४) सिरधोने के बाद स्नान की तयारी होती है एवं तेल की मालिश की जाती है। अतः चौथी अम्पङ्गनविधि कही है। इसमें तिल-सरसों नारियल आदि के तेलों की मर्यादा करनी चाहिये।

(५) मालिश के बाद शरीर के चिकनेपन एवं मेल को हटाने के

गिये उबटन (पीठी) किया जाता था (आजकल उबटन का काम प्रायः साबुन से होता है) अतः पाँचवी उबटनविधि कही है। इसमें उबटन, छाछ-साबुन आदि की मर्यादा करनी चाहिये।

(६) उबटन के बाद स्नान किया जाता है अतः छठी स्नानविधि कही है। इसमें स्नान की मर्यादा करनी चाहिये जैसे—तालाब आदि में स्नान न करूँगा, दिन में इतनी बार से अधिक न नहाऊँगा स्नान में इतनी सेर से अधिक जल न लगाऊँगा-यह तिथियों के दिनों में न नहाऊँगा आदि। हुआसन करान की मर्यादा भी स्नान के साथ ही करनी चाहिये।

(७) स्नान के बाद वस्त्र पहने जाते हैं अतः सातवी वस्त्रविधि की है। इसमें सूती, देगी, विदेगी, ऊनी रेशमी नाइलोन टैरालीन आदि वस्त्रों की मर्यादा करनी चाहिये। जैसे—अमुक प्रकार का वस्त्र नहीं पहनूँगा अमुक मूल्य का वस्त्र नहीं पहनूँगा अथवा एक वर्ष में अमुक सख्या में अधिक पगडो कोट बमोज गंजी, धोती, पनडून (भाड़ी घाघरा, पेटोकोट, सलवार ओढ़ना) आदि उपयोग में न लूँगा (जिनमें विकार पैदा हो अथवा लज्जा की रक्षा न हो सके, ऐसे वस्त्र भी धावक को न पहनने चाहिये)।

(८) वस्त्र पहनने के बाद बेसर चन्दन आदि का विलेपन किया जाता था (आजकल स्नो क्रोम, पाउडर, सेंट आदि लगाये जाते हैं) अतः आठवाँ विलेपनविधि कही है। इसमें उपयुक्त बेसर आदि द्रव्यों की मर्यादा करनी चाहिए। अजन मजन कुँकुम, टीको आदि भी विलेपन में अन्तर्गत हैं।

(६) धिलेपन के बाद फूलों की माला पहनने की या मुकुटादिक में फूल लगाने का रिवाज था (इत्र के फौजे तो अब भी लगाये जाते हैं), अतः नवी पुष्पविधि कही है। इसमें गुलाब, चमेली, केवडा-आदि के फूलों की अथवा इत्र सूघने की मर्यादा करनी चाहिये।

(१०) इत्र आदि लगाने के बाद आभरण (जेवर) पहने जाते हैं अतः इसकी आभरणविधि कही है। इसमें आभूषणों की मर्यादा करनी चाहिए जस—अमुक मूल्य से या वजन से अधिक जेवर में अपने शरीर पर न पहनूँगा (पुराने जमाने में विशेष जेवर रखने के दो लक्ष्य थे एक तो शरीर अलङ्कृत रहे एवं दूसरे सबट बेठा में उसकी सहायता से भीजन निर्वाह हो सके)।

(११) स्नानादि के बाद वायु शुद्धि के लिये घूर किया जाता है, अतः ग्यारहवीं धूपविधि कही है। इसमें लोमान अगरवत्ती आदि धूप के काम में आने वाले सुगन्धित द्रव्यों की मर्यादा करनी चाहिए।

ऊपर कही हुई ग्यारह विधियाँ शरीर की स्वच्छता सुरक्षा एवं विभूषा से सम्बन्ध रखने वाली हैं। अब शरीर को पुष्ट बनाने वाली एवं टिका कर रखने वाली खान पान सम्बन्धी वस्तुओं की विधियाँ बतलाई जाती हैं।

(१२) स्नानादि से निपटने के बाद दूध चाय आदि पीने का प्रायः रिवाज है अतः बारहवीं पेयविधि कही है। इसमें दूध चाय, ठण्डाई, शर्बत, छाछ आदि में योग्य द्रव्यों की मर्यादा करनी चाहिये।

(१३) दूध आदि के साथ कई लोग लड्डू जलेबी, पेडा बर्फी आदि मिठाई का नाश्ता भी करते हैं अतः तेरहवीं भक्षणविधि कही है।

इसमें मिठाइयों की संख्या निर्धारित करके तदुपरान्त त्याग करना चाहिए ।

(१४) नाश्ता के बाद मध्याह्न में भोजन किया जाता है, अतः चौदहवें ओदनविधि कहो है । विधिपूर्वक उमाल कर या रांधकर खाए जान वाले चावल खिचने घूली आदि द्रव्य ओदन मान गये हैं । इनकी मर्यादा करनी चाहिये ।

(१५) चावल आदि खाने के लिए दाल बड़ी आदि की जल्दतर प्राप्ति है, अतः पन्द्रहवें सूपविधि है । इसमें मूग, मोठ, उदक मसूर आदि की दालों का परिमाण करना चाहिये ।

(१६) चावल खिचने आदि में घी-तेल, दूध-दही छाछ चीनी आदि भी डाले जाते हैं, अतः सोलहवीं विगयविधि है । विगय अर्थात् यथा वाच है—१ दूध, २ दही, ३ घी ४ तेल, ५ गुड़-चीनी प्राप्ति । मक्खन मधु मद्य और मांस-ये चार महाविगय माने गये हैं ।

दूध दही घी आदि के मिश्रण से जो वस्तु बनती है अथवा तेरहवीं में तली मुनी जाती है उसे कडाहो विगय अथवा छारविगय कहते हैं । इसको मिला देन से विगय दस हो जाती है ।

कच्ची विगय तीन प्रकार की होती है—मीठी, नमकीन और तीखी ।

१ मीठी —खीर शोषण्ड रबड़ी, हलवा, मालपुआ एव लड्डू प्राप्ति सब तरह की मिठाइयाँ ।

२ नमकीन —बड़े पकोड़े, भुजिये कचोरी, चिबड़ा आदि ।

३ तीखी —र फीकी फीकी, खाजा, पूनी आदि ।

परस्परा से मुरझा, श्वेत, चीनी डाला हुआ नारंगी का फल एवं आमरस आदि भी बड़ाही विषय में माने जाते हैं ।

मद्य, मांस का तो श्रावक को मद्यका त्याग करदेना चाहिए एवं नेप दूध आदि विषयों का मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिए ।

(१७) लिचडी आदि के साथ गाव की भी आवश्यकता होती है अतः सत्ररहवीं गावविधि कही है । इसमें सूखे हरे सभी प्रकार के शाको की मर्यादा करना चाहिए । मद्य—मेरे हने शाको से अधिक खान का त्याग है ।

(१८) भोजन के समय आम, केले, अगूर आदि मधुरफल भी खाये जाने हैं, अतः अठारहवीं मधुरविधि कही है । मधुरफल सूखे हरे दो प्रकार के होते हैं । आम के अगूर आदि हरे मधुरफल हैं एवं दास खजूर-बादाम पिस्ते नौजे आदि सूखे मधुर फल हैं । इन सबका मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिये ।

(१९) जेमनविधि इसमें सामान्यतया भूख मिटाने वाली रोटी बाटी आदि खाद्य वस्तुएं ली गयी हैं । इनकी मर्यादा करना चाहिये कि अमुक अमुक धान्य की रोटी आदि के सिवाय त्याग है ।

(२०) भोजन करने वाले को पानी पीना भी आवश्यक है अतः उनोसवी पानीयविधि कही है । पानी के ठण्डापानी, यमपानी, खारा पानी, मोठापानी, पालरपानी, बाकल्पानी, सचित्तपानी, अचित्तपानी, सादापानी, सुगन्धितपानी आदि अनेक भेद हैं—उनमें से यथावश्यक करना चाहिए ।

(२१) मोजन के बाद मुख को साफ एवं सुवासित करने के लिये पान, सुपारी, इलायची, पीपल, भौंग, सौंफ, घनिया चूरन, गोली आदि द्रव्य खाए जाने हैं, अतः इकोसवी मुख्यवासविधि कही है। इसमें पान-सुपारी आदि द्रव्यों का मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिए।

(२२) यावक के लिये साधुओं की तरह सग पइल चलना कठिन है, अतः चाईसवीं वाहनविधि कही है। वाहन चार प्रकार के होते हैं—चरनेवाले, फिरनेवाले तरनेवाले और उठनेवाले।

(क) चरने वाले —हाथी घोडा ऊट बल आदि।

(ख) फिरनेवाले —रेल माटर, साइकिल, स्कूटर आदि।

(ग) तरनेवाले —नाव जहाज, आगबोट आदि।

(घ) उठनेवाले —देवविमान हवाईजहाज, हेलीकाप्टर आदि।

इन सभी प्रकार के वाहनों पर चढ़ने का मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिए।

(२३) साधुओं की तरह काप्ट आदि पट्ट से या साधारण कम्ब आदि से निर्वाह करना यावक के लिए कठिन है अतः तेईसवीं शयनविधि कही है। इसमें उन सब चीजों की मर्यादा करना चाहिए, जिन्हें बिछाकर मुख से सोया या बठा जा सकता है। यथा—मैं अमुक सख्या से अथिक् कुर्सी टेबल बच खाट, पलंग, दरी, चटाई गलीचा एवं आसन, बिछौना, सत्रिया आदि नहीं रखूंगा।

(२४) साधुओं की तरह नंगे पर चलना यावक के लिए कठिन है, अतः चौबीसवीं उपानहविधि कही है। इसमें उस बूट चप्पल आदि जूतों एवं खण्ड आदि का मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिये।

(२५) सचित्तविधि—पीछे नम्बर १२ से २१ वें बोल तक जो खाने-पीने के द्रव्यों की मर्यादा बनाई गई है, उनमें (ककरो, मनीरा अमूर अनाद, इलायची, सोंक, पानी आदि) अनेक चीजें ऐसी हैं जो प्रायः सचित्त अर्थात् अचित्त बनाए बिना भी काम में ली जाती हैं । श्रावक को जहाँ तक हो सके सचित्त वस्तु खाने पीने का सर्वथा त्याग करना चाहिए अथवा मर्यादा करनी चाहिये । जैसे—सचित्त कच्चा पानी नहीं पीऊगा एवं कच्ची वनस्पति आदि नहीं खाऊगा ।

(२) द्रव्यविधि—अगुनी एवं घातु की दशाका के सिवा जो भी पदार्थ मुह में डाल जायें वे सब अलग अलग द्रव्य माने जाते हैं । द्रव्य का अर्थ वस्तु है । दूध में ऊपर में चीनी डाली जाय तो दूध-चीनी ऐसे दो द्रव्य हो जाते हैं किन्तु बनाते समय चाहे पचास चीजें मिला दी जायें खीर लड्डू, घूरण, मिश्रचर आदिवत् वह एक ही द्रव्य माना जाता है ।

कई जीव के स्वाद को जीतने के लिए घाली में आर्द्र दसों चीजों को मिलाकर खाते हैं एवं उसे एक ही द्रव्य गिनते हैं—ऐसा कार्य विशेष त्यागी-चरागी ही कर सकते हैं । कई द्रव्यों की कमी करने के लिये राशते समय खिचड़ी आदि में सुपारी-खुअचा आदि डाल देना है और पीछे बाहर निकालकर खाने हैं, किन्तु ऐसा करना त्याग का दोग तथा उपहास समझना चाहिए ।

हाँ तो ! द्रव्यविधि में श्रावक को जीवनमर के लिये द्रव्यों की निर्धारित करके तदुपरान्त त्याग करना चाहिये ।

यद्यपि उपासकङ्गा सूत्र में २१ बोलों की मर्यादा का ही बर्णन है। बाहनविधि आदि पाँच बोल धर्मसंग्रह ग्रन्थ में वर्णित चौदह नियमों में है, किन्तु प्रायक प्रतिक्रमण के मानव व्रत में छद्बीस बोलों की मर्यादा की परिपाटी है, अतः यहाँ छद्बीस बोल दिए हैं।

प्रश्न ४—सातवें व्रत के अतिचार समझादय ?

उत्तर—भोग की अपेक्षा में सातवें व्रत के पाँच अतिचार हैं, यथा^१—

(१) सचित्ताहार—स्वाग किये हुए सचित द्रव्य को असावधानी वश खा लेना प्रथम अतिचार है।

(२) सचित्तप्रतिबन्धाहार त्यक्त सचित्त वस्तु से समुक्त द्रव्य को खा लेना दूसरा अतिचार है जैसे—गुठली सहित आम को चूसना या खजूर को खाना (यद्यपि आम एवं खजूर अचित्त हैं, किन्तु सचित्त गुठली से युक्त हैं। चाहे गुठलियाँ खायी नहीं जाती, फिर भी उनके जीबों का कष्ट होता है) अथवा हरे पत्तों पर दही-बड़े या बर्फ आदि खाना।

(३) अपक्वभोजविभक्षणता —नहीं पके हुए अर्थात् कच्चे बाजरा गेहूँ आदि को खाना तीसरा अतिचार है।

(४) दूष्पक्वभोजविभक्षणता —पूरे नहीं पके हुए बाजरा, गेहूँ आदि के पाल (जिनके दाने कच्चे रह सकते हों) को खाना चौथा अतिचार है।

१— उपासकङ्गा, अ० १, तथा प्रश्नसारासारोद्धार द्वार ६; पाया २८१

तुच्छौषधिभक्षणता — जिनमे खाने का पदार्थ छोडा हो और फटना ज्यादा पडे—ऐसे कच्चे मूंग की फली, सीताफल, ईसुखण्ड, बरौफल (धर) आदि खाना पाँचवाँ अतिचार है ।

अतिचारों के वर्णन का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि श्रावक को सचित्त वस्तु खाने का त्याग अवश्य करना चाहिए । इससे कई लाभ होते है—सचित्त खाने की अव्रत (आशा-वाछ्छा) रुकती है । जीम के स्वाद पर विजय होती है एव सहज मे अचित्त वस्तु उपस्थित होने से क्वचित्त भुषाशदान का लाभ भी मिल जाता है ।

प्रश्न ५—क्या श्रावक को रात्रि भोजन का भी त्याग करना चाहिए ?

उत्तर—श्रावक को क्या मनुष्य मात्र के लिए यह त्यागने योग्य है । ब्रह्म-धर्म के अनुसार देवों ने दिन के प्रथम प्रहर में ऋषियों ने मध्याह्न मे, पितरों ने तीसरे प्रहर मे एव दत्त्यों दानवों ने साध्या समय सदा भोजन किया है—इन मय की बेला का अति क्रमण करके रात को खाना अत्य न निवृष्ट है ।

आयुर्वेद का कहना है कि सूर्यास्त के बाद मनुष्य के हृदयकमल एव नाभिकमल सकुचित हो जाते है, अत रात को नही खाना चाहिए ।

जैनशास्त्र जावदिसा की दृष्टि से इसका निरीष निषेध करते हैं । उनका अभिप्राय है कि यदि एक भी त्रसजीव (मन्वी मच्छर

आदि) भोजन-पान के समय खाया-पीया, गया तो एक प्रकार से मास मन्थन एवं रक्त पान ही हो गया ।

जैन ग्रन्थों के अनुसार भोजन वं साय खाई गयी कीडो बुद्धि को खराब करती है, मक्खी वमन करवाती है, जू जलोदर एवं मक्खी कीड का रोग उत्पन्न करती है^१ । तथा रात्रिभोजन के पाप से जीव उल्लू काक, माजारी, गोघ, सांभर, सूअर साँप, बिच्छू एवं मोह की योनि में जन्म धारण करता है^२ ।

जैनसाधु प्राणान्त कष्ट में भी रात्रिभोजन नहीं करते^३, किन्तु आजकल के श्रावक इस तरफ बहुत कम सोच रहे हैं, एवं रात्रिभोजन की तरफ मुक्त रहे हैं । अच्छे अच्छे कहलान वाले श्रावकों के घर में प्रहर रात्रि तक भोजन चलता रहता है ।

वे श्रावक इस पिछले जमाने को याद क्यों नहीं करते जब श्रावक समाज में यह नियम सुटडता से पाला जाता था एवं कर्वावत् रात्रि भोजन करने वाले जन श्रावक के लिये तानाकसो होती थी कि क्या जैन होकर भी रात्रिभोजन करता है । अस्तु !

जमाना बगला है, रहन-सहन बदले है, लोगों की भावना बदली है फिर भी आत्मार्थी श्रावक को अपना धर्म निमाना चाहिए और रात्रिभोजन को सबदा छोडना चाहिए ।

१ धर्मसंग्रह सटीक

२ यौगशास्त्र ३।६ ७

३ देखो चारित्र्य प्रकाश पृथ १ प्रश्न १५

प्रश्न ६ —जन श्रावक के लिए मांस भक्ष्य है, या अभक्ष्य ?

उत्तर —जन श्रावक के लिये क्या मनुष्य मात्र के लिए अभक्ष्य है। मांसभोजी एवं अपांसभोजी प्राणियों की प्रकृति एवं शरीर रचना पर विचार करने से प्रतीत होता है कि मनुष्य प्रकृति से मांसाहारी नहीं है।

देखिए ! मनोरञ्जन के लिए मनुष्य बाग बगीचा आदि स्वच्छ स्थान पसन्द करते हैं, जबकि मांसाहारी-कुत्ते आदिको मांस-हड्डीयुक्त दुर्गन्धिपूर्ण स्थान अच्छा लगता है।

मांसाहारी जीव कच्चा मांस पचा सकते हैं, किन्तु मनुष्य नहीं पचा सकते। उनके सिवा—(३) मांसाहारी पशुओं (सिंह, कुत्ता, बिल्ली आदि) के नाखून पने-नुकीले होते हैं, किन्तु अपांसभोजी हाथी, गाय, भैंस आदि के बसे नहीं होते।

(४) मांसाहारियों के दाँत गाजर जमे लम्बे एवं अलग-अलग होते हैं किन्तु फलहारियों के दाँत छोटे छोटे और चौड़े होते हैं तथा परस्पर मिले हुए होते हैं।

(५) मांसाहारी जीव (कुत्ता बिल्ली आदि) जीभ न चपल चपल कर पाना पीने हैं और फल मांसाहारी गाय भैंस आदि पशु एवं मनुष्य घूट भरकर जल पान करते हैं।

(६) मांसाहारी जीवों के शरीर में पसीना नहीं निकलता उनके में शूक नहीं रहता एवं वे गर्मा से हाँफ कर जीभ बाहर निकाले

हूँ रहने है, विन्तु अन्न पत्र एवं सुगाढागे जन्तुओं मे ये सभी बाने नों होता ।

प्रश्न ७ — मासमण्य के विषय में वहाँ डाक्टरों का क्या मत है ?

उत्तर — 'घरकसहिता अ० २ म कहा है कि मास मनुष्य के गरीर में शीघ्र नों पचना अतः वह मनुष्य का आहार नहीं है ।

(२) सुश्रुतसहिता सूत्र ५६ के अनुसार मास से बप और पित्त के रोग उत्पन्न होत है, अतः उसको न खाता चाहिए ।

डाक्टर एल्फ्रेड माट्ट ने लन्दन के डाक्टरों की समा म अपना निम्न पत्रे हुए कहा था कि मास में ८० से ६० प्रतिशत कोडे जाने है ।

मासहारियों के प्रायः कसर, टाय, पायोरिया, गडिया, मृगी, उन्माद, अनिद्रा लखा पयरी आदि भयङ्कर रोग अधिक मात्रा म उत्पन्न होने हैं । त्रिन देगी में मास खाने का प्रचार अधिक है वहाँ रोग अधिक है और रोग अधिक होने से वहाँ डॉक्टरों की संख्या भी अधिक है । देखिए ! आस्ट्रेलिया निवासी दुनिया में सबसे अधिक मास मण्य करते हैं अतः वहाँ डाक्टर भी गर्वाधिक है । जरा निम्न निम्न मनरी पर ध्यान लगाइये ।

देश	प्रति मनुष्य मांस का मासिक खर्च	दस लाख मनुष्यों के पीछे डॉक्टरों की संख्या
जर्मनी	६४ पौण्ड	३५१
फ्रांस	७७ पौण्ड	३८०
इटली	११८ पौण्ड	५७८
ऑस्ट्रेलिया	२७६ पौण्ड	७८०

प्रश्न ८ — क्या अन्न फल आदि को अपेक्षा मांस में शक्ति अधिक नहीं होती ?

उत्तर — डॉक्टरों के मतानुसार आदाम में ६१ प्रतिशत घना, चावल, घा, मक्खन में ८७ प्रतिशत, गेहूँ, मकई में ८६ प्रतिशत, किसमिस में ७३ प्रतिशत मलाई में ६६ प्रतिशत, मांस में २८ प्रतिशत, अण्डे में २६ प्रतिशत एवं मछली में १३ प्रतिशत शक्ति मानी जाती है।

डॉक्टर फोड एम डी कहते हैं कि मटर घना आदि धान्यों में २३ से ३० प्रतिशत नाइट्रोजन ५० से ५८ तक नशास्ता एवं तीन प्रतिशत के लगभग नमक वाले पदार्थ होते हैं, किन्तु मांस में नाइट्रोजन केवल ८ से ६ प्रतिशत होती है तथा नशास्ता तो नहीं के समान होता है अतः मांस मस्तिष्क को नसों को शक्ति नहीं पहुँचा सकता।

युरोप के यू.सेल्स विश्वविद्यालय आदि में भी मांसाहारी छात्रों को अपना फल—शाकाहारी छात्र श्रेष्ठ प्रमाणित हुए थे। इन परीक्षाओं में दस हजार छात्र बठे थे। उनमें से पाँच हजार को फल शाक अन्न आदि पर तथा पाँच हजार को मांस पर रखा गया था। छ मास बाद जाँच करने पर पता लगा कि शाकाहारी सब बातों में तेज रह। मांसाहारियों में क्रोध-क्रूरता आदि दुगुण व शाकाहारियों में दया क्षमा प्रेम आदि सद्गुण विशेष मिले।^१

प्रश्न ६ —जन गार्स्त्रो ने भगवान् ने मांस भक्षण के विषय में विशेष क्या कहा है ?

उत्तर—मांस भक्षण करने से जीव नरक का आयुष्य वाचते हैं।^२ षन्वन्तरिषद्य न स्वयं मत्स्य गाय महिष आदि का मांस खाया और रोगियों को खिलाया, जन वह मर कर छद्मो नरक में गया।^३

नरक में जान पर मांस खाने वाले को 'तुम्हें मांस बहुत प्रिय था' ऐसे कहकर परमाधार्मिक देवता उसका मांस काट कर एष अग्नि में फकाकर उसे ही खिलाने है।^४

उपयुक्त विवेचन पर थावकों को गहराई से विचार करके मांस खाने का सबथा त्याग कर देना चाहिए।

१—जनरल डी मॉर्ली, पृष्ठ ६४ ६२ के आधार से

२—स्या, ४।४।३७३

३—विपाक० सुत० १ अ० ६

४—उत्तरा० १६।७०

अण्ड मांस का पुरुरूप है, अतः वे भी श्रावक के लिए अमश्य है।
अप्रेक्षी दवा लेने समय श्रावक को पूरी सावधानी रखनी चाहिए।
उनमें मांस अण्डे आदि विशेष रूप में रहते हैं।

प्रश्न ६० — मद्यपान के विषय में श्रावक को क्या करना चाहिए ?

उत्तर — मद्यपान बिल्कुल न करना चाहिए। प्रभुवचना के अनुसार मद्य पाने वाला नरक में जाता है एवं उसे उसी के पुन एवं चर्बी उबाल कर पिलाए जाते हैं।*

मद्यपान करने से बुद्धि नष्ट हो जाती है एवं मनुष्य सन्निपात के रोगोवत् पागल बन जाता है, नम्र होकर नाचने लगता है, बेहोशी में जड़ी जहीं गिरजाता है तथा नहीं कहने की गुप्त बातें भी कह डालता है। महर्षि वेदव्यास न यहाँ तक कह दिया है कि एक तरफ तो दुनियाँ के सब पाप हैं और एक तरफ मद्य मांस का पाप है।

मद्यपान का अपमान इतना बुरा है कि लगने के बाद छटना बहुत कठिन है। पहले से आया है कि फ्रांस सरकार मद्यपान को रोकने के लिए बीस करोड़ डालर प्रतिवर्ष खर्च करती है*। धारस्ता-पोलेण्ड में तरह चिकित्सालय चालू हैं तथा सोवियत कजाकिस्तान में मद्य पीकर गाड़ी चलाने वाले ड्राइवर को गोली से उड़ देने तक का विधान है। इतना कुछ करने पर भी फ्रांस मद्यपान में सर्वोपरि है। अनुमानतः फ्रांसनिवासी बीस करोड़ गैलन मद्य प्रतिवर्ष पी जाते हैं। पोलेण्ड में साठ प्रतिशत स्कूल के लड़के मद्य पान करते हैं। समुत्तराज्य अमेरिका एवं ब्रिटेन में भी प्रायः यही स्थिति है।

१—उत्तर० १९७१

२—बैन भारती, ३० मई १९६५ डाक्टर जेडमल बंगाली के लेख से

विशेषों की बात दूर रहो ! भारत में भी मद्यपान का व्यसन कम बड़ना जा रहा है । जन, अण्णव एव वेदान्तो कहलाने वाले लोग भी इसका भेवन करने लग गये हैं । अस्तु ! श्रावक को इसका परित्याग करना ही चाहिए ।

प्रश्न ११ — श्रावक का खाना पीना आदि धन में है अथवा अन्न में ?

उत्तर — श्रावक का खाना, पीना, पहनना, ओढ़ना आदि सभी सामाजिक कार्य अन्न में है । इनसे निरन्तर पाप स्रग्ता रहता है, एहीलिये—श्रावक उपभोग-परिभोग सम्बन्धी वस्तुओं का पर्याप्त स्वाम करता है । त्याग प्राय एव करण-तीन योग से किया जाता है अर्थात् त्याग करने वाला त्यागो हुई वस्तु का मन-वचन वाय से स्वयं खान-पान आदि नहीं करता किन्तु गृहस्थ होने के लिये दूसरों को खिलाता—पिलाता है एव उत्तम क्रियाओं का व्यवहार से अनुमान भी करता है ।

यह सब करता हुआ भी श्रावक उक्त—कार्यों में धन-पुण्य नहीं मानता । क्योंकि ये सभी कार्य अन्न को पुष्ट करने लिये हैं एव जहाँ अन्न की पुष्टि होती है वहाँ कभी धन-पुण्य नहीं होता, मात्र सामाजिक व्यवहार है ।^१

प्रश्न १२ — भोग अर्थात् भोजनादि सम्बन्धी उपभोग-परिभोग वस्तुओं में समझ में आ गया । अब कम (व्यापार) सम्बन्धी उक्त वस्तु का विवेचन कीजिये ?

१ बाह्यवस्तु की बीपार्ई दाछ ६ के बजार से ।

उत्तर—उपभोग परिभोग की सामग्री प्राप्त करने के लिए धातक को कुछ न कुछ धन्धा तो अवश्य करना ही पड़ता है किन्तु करते समय उसे महाआरम्भ वाले धन्धे से बचन का प्रयत्न करना चाहिए। शास्त्र में इगालकम्मे आदि पन्द्रह कर्मादान (व्यापार) बतलाए हैं धातक को बन सके तो इनका समूचा त्याग कर देना चाहिये, अन्यथा मर्यादा कर लेनी चाहिये।

कर्मादानों का विवेचन क्रमशः इस प्रकार है—

(१) इगालकम्मे—अज्ञार कोयले बनाकर उनके धन्धे से आजो विका चलाना अज्ञार कम है। इसमें अग्नि का महाआरम्भ होता है। सोनार, ठठेरे, लुहार, कुम्हार हलधारी, मडभूजे, ईट-चूने आदि के भट्टे के धन्धे भी इसी कम में गिने जाते हैं।

(२) वणकम्मे—जंगल के वृक्षों को काटकर बेचना बन कम है। फूल-कल, शाक, घास, घाँघ आदि के व्यापार तथा आटा पीसने का व्यापार भी इसी में है।

(३) साडीकम्मे—गाड़ी रथ पालकी, पलग, किवाड, पाट, बाजोट, आदि बनाकर बेचना शकट कर्म है।

(४) भाडीकम्मे—गाड़ी, माटर जहाज तथा ऊट घोडा, बैल आदि से भाडा कमाना भाटक कम है। (मकान किराये देना तथा व्याज पर हथिया देना भी इसी कम में गिना जाता है)।

१. व्यापारकृशा अ० १, भगवती ८।१ तथा आवश्यकतियुक्ति-प्रत्या-
ख्यानाभ्यसन ।

(५) फोटीकम्मे—हल, धुरहाडी, मुरग आदि से पृथ्वी को घोजना एवं उससे निकल हुय पत्थर, मिट्टी, घातु आदि के पत्थरों का खेचने का धंधा करना स्फोटन कर्म है।

(६) दन्तवाणिज्ये—हाथीनाँव, दास, चर्म, मोती, नख, हड्डी, मींग एवं कस्तूरी आदि का (जिनके लिये बस जीवों की हिंसा होती है) व्यापार करना दन्तवाणिज्य है।

(७) लक्षवाणिज्ये—लाख, नेणसिल, आल, गुली, हरताल, कसूवा, रायण एवं रेशम आदि का व्यापार करना लाखावाणिज्य है। लाख आदि की तयार करने में बस जीवों की हिंसा बहुत होती है।

(८) रसवाणिज्ये—दूध, दही, घी, तेल, गुड, मधु, मक्खन, मदिरा, मांस, चर्बी आदि का व्यापार करना रसवाणिज्य है। दूध आदि रस वाले पत्थरों के व्यापार में घोंटी, मक्खो आदि जीवों की अत्यधिक हिंसा है तथा मन्त्रिा मांस मुद जीवों के ही पिण्ड हैं इनका धन्धा अर्थात् कलान एवं कसाई का धन्धा है।

(९) विषवाणिज्ये—अफोम सखिया आदि विषले पदार्थों का व्यापार करना विषवाणिज्य है। विष पत्थर से तलवार, बन्दूक आदि के सभी अस्त्र भी ग्रहण करलिये जाते हैं, जिनका प्रयोजन जीवहिंसा करना है।

(१०) केसवाणिज्ये—दास, दामो, ऊट घोडा, बैल बकरी, भेड आदि केस वाले जीवों का व्यापार करना केस वाणिज्य है।

(११) अतपीलनकम्मे—तिल, सरसों, ईस आदि की धानी, फालू आदि द्वारा पीलने का व्यापार करना अतपीलनकर्म है।

(१२) निलक्षणकम्मे—वैल, घोडा आदि पशुओं का नपसक घनान का व्यापार करना निर्लोच्छ्रनकम है । यह बहुत ही पूजित घन्घा है ।

(१३) दवग्निदायणया—भूमि (तेत) को साफ करने के लिए वनों पवनों में आग लगाते का घन्घा करना दवाग्निदायणता कम है, इसमें महार्हिसा होती है । बीमा बेच कर दूकान, गोदाम आदि में आग लगाना भी यही कम है ।

(१४) सरद्वहतडागपरिसोसणया—सेती आदि करन के लिए मील, द्रह, सालाब आदि को सूखाने का घन्घा करना सरद्वहतडागपरिसोषणता कम है । जलाशयों को खाली करन अथवा सूखाने में जन्वर जीवों का अत्यधिक विनाश होता है ।

(१५) असर्दजनपोषणया—आजीविका चलाने के लिये बेश्या नट नटो, भाण्ड आदि को रखना तथा सिह, कुत्ता बाघ शीछ आदि हिंसक प्राणियों का (मरकस वालो एव माजीगरो की तरह) पोषण करना असर्दजनपोषणता कम है ।

ये पन्द्रह कर्माणि व्यापार की दृष्टि से कहे गये हैं एवं थावक को इन व्यापारों से आजीविका करने का मर्यादा उपरांत त्याग करने चाहिये । जमे—आनन्द थावक ने ५०० हल उपरान्त खेती का व्यापार किया था एव शकडाल्पुत्र ने ५०० सूखाने रखकर सदुपरान्त बुम्हा का घन्घा छोडा था ।

नवा-पुञ्ज

प्रश्न १ —आठवें व्रत का क्या नाम है ?

उत्तर—अनयदण्डविरमणव्रत है । इसका अर्थ है अनर्थ हिंसा का त्याग करना । हिंसा दो प्रकार की होती है—अथ हिंसा और अनर्थ हिंसा । तन, धन एवं स्वजन-परिवार के लिए की जाने वाली हिंसा अथहिंसा है तथा केवल हास्य कौतूहल अविद्वेक एवं प्रमादवश की जाने वाली हिंसा अनर्थहिंसा है । जैसे—पानी में पत्थर फेंकना, चूने पगु पर प्रहार कर देना, घेमतलव वृक्ष की डाली तोड़ देना एवं बेपरवाही से घी-तेल आदि के बर्तनों को खुला छोड़ देना । अथहिंसा को अथदण्ड तथा अर्थहिंसा को अनर्थ दण्ड कहते हैं । श्रावक को अनर्थदण्ड का त्याग अवश्य करना चाहिये ।

प्रश्न २ —अनयदण्ड कितने प्रकार का है ?

उत्तर—चार प्रकार का माना गया है—१ अपध्यानचरित
२ प्रमादचरित ३ हिंस्र प्रमाद ४ पापकर्मोपदेश ।

(१) अपध्यानचरित—आतध्यान एवं रौद्रध्यान अपध्यान अर्थात् बुरे ध्यान है एवं इनमें निष्प्रयोजन रमण करना पहला अनयदण्ड है ।

दुःख के समय चिन्ता शोक करना तथा रोना मूरना आतध्यान है । श्रावक को विकट बेला में धम रखना चाहिए एवं दुःख को समभाव से सहना चाहिए तथा मृतकों के सौदे प्रयास से बिल्खने का । क्रोध-लौन आदि के

को मारने पीटने या लूटने आदि का विचार करना या इन कार्यों में प्रवृत्त होना रौद्रध्यान है। श्रावक को इससे बचने रहना चाहिए।

(२) प्रमाद चरित — प्रमाद का आचरण करना अन्धदण्ड का दूसरा भेद है। ग्रन्थों में प्रमाद के पाच भेद भी दिए हैं—१ मद्य २ विषय ३ कषाय ४ निद्रा ५ विक्रिया।^१

(क) मद्य — मदिरा माग आदि नशेली चीजों का सेवन करना मद्य प्रमादाचरण है।

(ख) विषय — इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होना यानि विकार पदा करने वाले गाने सुनना, नाटक देखना, पौष्टिक पदार्थों का भक्षण करना आदि विषय प्रमादाचरण है।

(ग) कषाय — क्रोधादिक पापों से बेमान होकर अनय कर डालना कषाय प्रमादाचरण है।

(घ) निद्रा — नित्य करने योग्य धार्मिक क्रियाओं की उपेक्षा करने हुए वस्तु बेवस्तु सो जाना निद्रा प्रमादाचरण है।

(ङ) विक्रिया — समय में बाधक एवं चारित्र्य विरुद्ध कथा की विक्रिया कहते हैं। विक्रियाएँ चार हैं—१ स्त्रीकथा २ भक्तकथा ३ देश कथा ४ राजकथा।

(१) स्त्रियों की जाति कुल रूप तथा वेश के अपेक्षा से प्रशंसा या निन्दन करना स्त्रीकथा है। (२) भोजन का निर्माण भेद प्रभेद,

१ पञ्चाशक प्रथम गाथा २३।

२ स्वा० ४।२।२४२।

आरम्भ का प्रमाण तथा धन का प्रमाण बनलाना भवतकथा है । (३) दिग्विषय के भोजन की विधि विधान, धातु-उत्पत्ति एवं रूप-बाष्पीकरण, गम्य अगम्य स्त्री तथा वेद्य भूषा का निन्द्या प्रशंसात्मक वर्णन करना देवकथा है । तथा (४) राजा के आगमन, प्रयाण बल-बाह्वन एवं खजाने की निन्द्या-प्रशंसात्मक बात करना राजकथा है । इन पाँचों प्रकारों के प्रमाणों से श्रावक को बचना चाहिए ।

(३) हिस्रप्रदान —तलवार-खन्दूक आदि शस्त्र, जहर एवं अग्नि आदि (आगे विशेष हिंसा करने वाली वस्तुएँ) दूसरे को देना तीसरा अनयच्छन्द है ।

(४) पापकर्मोपदेग —खेती करो । व्यापार करो । मकान बनाओ । चोरी करो ! मछलियाँ पकड़ो ! राजविद्रोह करो आदि पाप के कार्यों का उपदेग देना चौथा अनयच्छन्द है ।

यद्यपि ये चारों प्रकार के अनयच्छन्द प्राणिमात्र के लिए त्यागने योग्य हैं फिर भी गृहस्थावास की विवशता के कारण श्रावक इनका पूनमया त्याग नहीं कर सकता । अतः वह आठ आगार (छूट) उपरान्त दो कारण, तीन योग से त्याग करता है ।

प्रश्न ३ —आठ आगार कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—१ अपने सुख-सुविधा के लिए २ माता पिता, पुत्र-पुत्री, माई बहिजन आदि जाति-स्वजनों के लिए ३ घर के लिए ४ परिवार के लिए ५ मित्रों के लिए ६ नाग देवता के लिए ७ भूत प्रेतानि के लिए ८ एवं मन के लिए ।

इन आठों के कारण से यदि उपयुक्त अपध्यान चरित आदि अनयदण्ड का सेवन करना पड़े तो श्रावक इनका आगार रखता है ।^१

प्रश्न ४ —आठवें व्रत के अतिचार समझाइए ?

उत्तर—पाच अतिचार हैं—१ कदप २ कौत्कुच्य ३ मौख्य
४ सयुक्ताधिकरण ५ उपभोग-परिभोगातिरिक्तता ।

(१) कामवासना प्रबल करने वाले एवं मोह उत्पन्न करने वाले शब्दों का हास्य या व्यंग्य में दूसरों के लिए उपयोग करना कदप अतिचार है । स्त्री-पुरुषों के ह्राव भाव, विलास विभ्रम, शृंगार एवं गुहाग उपागों का वर्णन करना तथा कविता आदि के रूप में लिखना भी इसी के अन्तगत है ।

(२) आँख, नाक, मुँह, भृकुटि आदि अपन अंगों को विकृत बनाकर माड या विदूषक की तरह लोगों को हँसाना एवं होली आदि पर्वों पर बोभत्स नृत्य गान आदि करना कौत्कुच्य—अतिचार है ।

(३) बिना कारण ही अधिक बोलना, अनगल बातें करना एवं जिससे सुनने वाला क्षत्रु बन जाय—ऐसे शब्दों का व्यवहार करना मौख्य अतिचार है ।

(४) ऊँखल मूशल चक्की, शिला-लोढा, हल काला एवं धनुष-बाण आदि निंसाकारक वस्तुओं को तैयार करके रखना सयुक्ताधिकरण अतिचार है । तत्र यह है कि सज्जित शस्त्र तत्काल हिंसा के कारण बन सकते हैं ।

१ सूत्र मु० २ अ० २ में इन आठों कारणों से किया गया पाप अर्पदण्ड कहा है ।

(५) उपभोग-परिभोग व्रत स्वीकार करते समय जो वस्तुएँ मर्यादा में रखी गई हैं उनमें अत्यधिक आसक्त रहना यानि विशेष आनन्द या स्वाद लेने के लिए उनका बार-बार उपयोग करना उपभोग परिभोगातिरिक्ता भी—अतिचार है। जैसे—मूख न होने पर स्वाद के लिए बार बार खाते रहना, आवश्यकता न होने पर भी पुनः पुनः स्नान करना एवं पोशाक बदलना।

ध्यायक को इन पाचों अनिचारों से दूर रहकर आठवें व्रत की आराधना करनी चाहिए। यह तीन गुण व्रतों का सन्निभ विवरण सम्पन्न हुआ।

दशवर्ष-पुञ्ज

प्रश्न १—शिव्याव्रत का क्या रहस्य है ?

उत्तर—जिसतरह मन्दिर की छोटी पर कल्प होता है एवं मस्तक के ऊपर मुकुट होता है, उसी प्रकार अणुव्रतों-गुणव्रतों के ऊपर कल्प मुकुटवत् शोभा देने वाले सामायिकादि चार व्रत शिखाव्रत कहलाते हैं ऐसा श्री भिक्षु स्वामी का मतव्य है। हरिमद्रसूरि ने कहा है—साधु धर्माभ्यास शिक्षा श्रेष्ठव्रतके अभ्यास को शिक्षा कहते हैं। तत्र यह निकला कि सामायिकादि चार व्रतों में धर्म का विशेष अभ्यास किया जाता है, अतः इनका नाम शिव्याव्रत ३

अणुव्रत—गुणव्रत यावज्जीवन के लिए होते हैं, किन्तु गिणाव्रतों के प्रत्याख्यान का समय विभिन्न प्रकार का है। जैसे—सामायिक का समय एक मूहृत है देशवकाशिक व्रत का समय धारने वाले की इच्छानुसार है एवं पोषक का समय दिन रात है।

प्रश्न २ —सामायिक का अर्थ समझाइए ?

उत्तर—प्राचीन जैनाचार्यों (हरिभद्र मलयगिरि आदि) ने भिन्न भिन्न व्युत्पत्तियों द्वारा सामायिक का अर्थ इस प्रकार समझाया है।

(१) “समस्य-रागद्वेषान्तरालवर्तितया मध्यस्थस्य आय लाभ समायः, समाय एव सामायिकम् ।” राग द्वेष में मध्यस्थ रहना सम है एवं समरूप मध्यस्थभाव का साधक को जो आय-लाभ होता है, वह सामायिक है।

(२) “समानिज्ञान दर्शन चारित्र्याणि तेषु अयन गमन समाय, स एव सामायिकम्” मोक्ष मार्ग के साधन ज्ञान, दान चारित्र्य सम कहलाते हैं, उनमें अयन—प्रवृत्ति करना सामायिक है।

(३) सब जीवेषु मैत्री साम साम्नी आय लाभ समाय स एव सामायिकम्—सब जीवों पर मैत्री भाव रखने को साम कहते हैं, अतः साम का लाभ जिसमें हो वह सामायिक है।

(४) ‘सम, सावधयोग-निरहार निरवधयोगानुष्ठानरूप जीवपरिणाम तस्य आय लाभ समाय स एव सामायिकम्’ सावध (पाप) कार्यों का परित्याग एवं निरवध कार्यों (अहिंसा-समता

आदि) का आचरण ये दो जोवान्ने के पुनः प्रलय कहते हैं। उक्त सम की जिसके द्वारा प्राप्ति होती है।

(५) "समये कतव्य सामायिकम्" इति शब्दों से हमें याग्य आवश्यक काय को सामायिक कहते हैं—
लिए नित्य प्रति कतव्य की भावना प्रकट।

ऊपर शब्दशास्त्र के अनुसार व्युत्पत्तियाँ की हैं, किन्तु सभी का अर्थ स्वभाव में रमण करना है।

प्रश्न ३ सामायिक करने की विधि।

उत्तर मुहपत्ति-पूजणी आदि कर, मुहपत्ति वाचकर एव फिर पुनः तरफ मुह करके श्रावक तीन महाविदेह-क्षेत्र को पुष्कालवतादि मगवान को वन्दना करते हैं और को आना लेने है, फिर निर्मा बोलते हैं—

करेमि मते ! सामाह्य
(मुहत्त एगं) पञ्जुवासामि,
मणसा वयसा कायसा तत्स
अप्याण वोत्तिरामि ।

भावाय—(धावक ग्रहण करता है। सामायिक

सक दो वरण तीन योग से सावध योग (पाप के कार्यों) का त्याग करता हूँ अर्थात् मन घबचन जाया के योग से न तो मैं स्वयं सावध काय करूँगा और न दूसरों के पास कराऊँगा। इतना ही नहीं सामायिक धारणा करने से पहले जो सावध अनुष्ठान किये हैं उन सब से पाछा हटाना हूँ एव उनकी आत्मसाक्षी से निन्दा करता हूँ, गुरु साक्षी से गर्हा घणा करता हूँ एव आत्मा को पापों से दूर करता हूँ।

इस पाठ से श्रावक बठारह पाप एव पाँच आसुर-द्वारों का एक मुहूर्त के लिए दो वरण-तीन योग से त्याग करता है। यद्यपि सामायिक के मूल-पाठ में काल का उल्लेख नहीं है किन्तु प्राचीन जनाचार्यों ने नवकारसी की तरह परम्परा से इसका कालमान भी एक मुहूर्त ही माना है *।

१ (क) इह सावधयोगप्रत्याख्यानरूपस्य सामायिकस्य मुहूर्तं मानता सिद्धांतेऽनुक्ताऽपिज्ञातव्या प्रत्याख्यान कालस्य जघन्यतोऽपि मुहूर्तमात्रत्वात्तमस्कारसहित प्रत्याख्यान वदिति।

—जिनलाभसूरि, धारम प्रबोध।

(ख) त्यक्तार्तं रोद्रध्यानस्य, त्यक्तमावधकर्मणः।

मुहूर्त समता मा ती, विदुः सामायिक-व्रतम् ॥

—योगशास्त्र, पषम प्रकाश

(ग) सावधकर्म मुक्तस्य, दुष्परिहरितस्य च।

समभावो मुहूर्त उदु, व्रत सामायिका ह्ययम् ॥

—धर्मसंग्रह अधिकार २

प्रश्न ४ —सामायिक षष्ठ ग्रहण करने के बाद क्या करना चाहिए ?

उत्तर—चउवीसत्यव अवश्य करना चाहिए । चउवीसत्यव में इच्छामि पट्टिकमिडं, तस्स उत्तरो-ल्लोगस्स नमोत्थण, ये धार पाटियाँ बोली जाती हैं । पहली पाटी में गमनागमन करते समय जान-अनजान में हुई जीव हिंसा को आलोचना है । इसमें १८ लाख २४ हजार १२० मिच्छामि दुक्कड लिये जाते हैं १। दूसरी पाटी में कायोत्सग सम्बन्धी आपार है । तीसरी पाटी में चौबीस भगवान् की स्तुति है और चौथी पाटी में अरिहन्त भगवान को नमस्कार किया गया है ।

विधि पूर्वक चउवीसत्यव करके पप्पासन सिद्धासन आदि किसी एक आसन से निश्चल होकर देव, गुरु, धर्म का भजन स्मरण करना चाहिये । पाँचों प्रकार का स्वाध्याय करना चाहिये । आनविचयादि एव पिण्डम्पादि ध्यान करना चाहिए २। अठारह पापों में से कोई भी पाप न लग जाय इसकी पूरी सावधानी रखनी चाहिए । अठारह पाप ये हैं—

१ जीवों के ५६३ भेद हैं । उन्हें अभिह्या आदि १० पन्नों से गूणने पर ५६३० हुये। हिंसा राग-द्वेष से होती है अत दोगुना किया ११२६० हुये। हिंसा तीन करण तीन योग से होती है अत फिर नव से गुणा किया —१ लाख १३४० हुये। आलोचना तीन काल सम्बन्धी होती है अत फिर तीन गुणा किया—३ लाख ४ हजार २० हुये । आलोचना अरिहन्त, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय गुरु और आत्मा—इन छहों की साक्षी से की जाती है इसलिए फिर छ गुणे किये तब १८ लाख २४ हजार १२० हुये ।

२ मनोनिग्रह के दो मार्ग, पृष्ठ ५३ एवं ६० में इन ध्यानों का वर्णन है ।

(१) प्राणातिपात जीवहिंसा (२) मृषावाद असत्य वचन (३) अदत्तादान-चोरी (४) मैथून अन्नह्यचर्य (५) परिग्रह ममता (६) क्रोध (७) मान (८) माया (९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अम्ब्याख्यान झूठा कलक लगाना (१४) वैशुन्य धुगली खाना (१५) परपरिवाच पराई निन्दा (१६) रति अरति—असंयम मे अनु राग एव संयम मे उपासीनता (१७) मायामृषावाद कपट सहित झूठ बोलना (१८) मिथ्या दशनशल्य विपरीत श्रद्धान ।

प्रश्न ५ —क्या सामायिक में कोट कमीज बतियान, पगडो आदि रखे जा सकते हैं ?

उत्तर—वास्तव में सामायिक कुछ अशों में साधुपना है, अतः हममें प्रायः साधु की तरह ही मुद्रपति, चान्द्र, पूजणी आदि रखे जाते हैं एवं कोट, कमीज आदि पहनने की परम्परागत मनाही है ।

आजकल कई श्रावक सामायिक में बतियान, मोजे आदि रखने लगे हैं एवं टाकने पर कहते हैं कि यदि हमें उक्त वस्त्र रखना नहीं बल्यता तो स्त्रियों को कैसे बल्यता है ? समाधान इस प्रकार है— स्त्रीलिंग होने से उनका वस्त्र उतार कर पुरुषों की तरह खुला बठना व्यवहार में उचित नहीं लगता, अतः वे मूल रूप में सामायिक कर सकती हैं । शास्त्र में भी साध्वियों को आधिया एवं कपुकी पहनने की विशेष आज्ञा है किन्तु साधुओं को (कोट, कमीज आदिवत्) सिला हुआ कपड़ा पहनने का बिल्कुल निषेध है । अतः स्त्रियों का हेतु लगा कर पुरुषों को परम्परागत मर्यादा का भंग न करना चाहिए ।

प्रश्न ६—व्या सामायिक का द्रव्य, क्षेत्र काल एव भाव से भी कुछ विशेष सम्बन्ध है ?

उत्तर—सम्बन्ध ही नहीं सामायिक करने वाले को द्रव्यादि की शुद्धि का ध्यान रखना परम आवश्यक है। आजकल कई धावकों को मुहपत्ति बाधने में अरुचि होती है किन्तु उन्हें गर्भावास की स्थिति का स्मरण करने अरुचि से न घबराना चाहिए।

द्रव्य से —सामायिक करनेवाले को सत्र से पहले द्रव्य शुद्धि पर गौर करना चाहिए। यद्यपि निश्चय दृष्टि से सामायिक ही द्रव्य है, फिर भी व्यवहार दृष्टि से सामायिक के समय उपयोगी उपकरण भी द्रव्य कहलाते हैं। सामायिक में माला मुहपत्ति पूजनी आसन-चादर आदि द्रव्य सादगी से सम्पन्न होने चाहिए।

क्षेत्र से—यद्यपि सामायिक सभी क्षेत्रों में की जा सकती है, फिर भी एकान्त शुद्ध एवं निर्विकार स्थान में अच्छी होती है। बहुत सी वृद्धा-बहनें रसोईघर आदि के पास बैठकर सामायिकें भी कर लेती हैं एव घर तथा बच्चों की सार सम्भाल भी कर लेती हैं। सम्भवतः इसीलिए यह कहावत चली है—सामायिक में समताभाव गुड़ की भेली बुत्ता खाय। वास्तव में ऐसी सामायिकें द्रव्य-सामायिकें हैं उनसे आत्म-कल्याण असम्भव है।

काल से—सामायिक का समय ऐसा रखना चाहिए कि जिस समय सामायिक में बाधा डालने वाली अडचनों की सम्भावना न हो। कई बहनें अगला पिछला विचार किए बिना सामायिक कर लेती हैं, फिर ८ ७ ६ निकट आकर रोने लगते हैं एव गोद

बैठते हैं। कई भाई दूकान की चाबियाँ लेकर सामायिक में बठ जाते हैं। पीछे नौकर आकर चाबियाँ मागता है एव सेठजी या तो चाबियों को दूर रटाकर घोसिरे घोसिरे कर देते हैं या स्वयं मुँह फिरा लेते हैं और नौकर कमर में बधो हुई चाबियाँ को खालकर ले जाता है। ऐसा करने से सामायिक में दाप लगता है।

यद्यपि सामायिक चाहे जब हो सकती है फिर भी प्रातः काल का शान्त वातावरण सर्वोत्तम माना गया है।

भाष्य से—द्रव्य क्षेत्र काल शुद्ध होने पर भी भाव शुद्धि परमावश्यक है, अतः सामायिक के समय पूरी सजगता रखनी चाहिए कि कोई भी दुर्भावना मन में न आ जाय। वास्तव में साधक को सामायिक में एक क्षण भी निकम्मा न रहना चाहिए। ध्यान स्वाध्याय व्याख्यान श्रवण आदि कुछ न कुछ सक्रियता चालू ही रखनी चाहिए। रात को दो-तीन बजे उठकर हाथ में माला एव मोती का सहारा लेकर मोची हुई आँखों में सूर्योदय तक चार पाँच सामायिक करके मन में मुशा मानने वाले श्रावक श्राविकाओं को जरा ध्यान देना चाहिए कि—ये सामायिक केवल नाममात्र की हुई या कुछ काम की भी ?

प्रश्न ७—सामायिक में आजकल लोगों की रुचि कम क्यों है ?

उत्तर—अरुचि का पहला कारण है सामायिक के महत्त्व को न समझना और दूसरा कारण है बड़ों-बूढ़ों का नियमानुसार सामायिक न करना एव प्रतिदिन पाँच-सात सामायिक करके भी अपनी प्रकृति एव आचरणों को न सुधारना।

कई भाई बहिनों प्राचीन परम्परा के अनुसार सामायिक तो कर

लेते हैं लेकिन सावध निरवध भाषा का बिल्कुल ख्याल नहीं रखने एव दुनियाँ की बातों में पड़ जाते हैं। कई किसी के माँ बापों को फोसते हैं तो कई किसी के सास-समुर एव बहू-बेटियों को। कई ब्याह सगाई एव दूकानदारी की कहानी कहने लगते हैं तो कई लड़ाई मगडे एव मामले मुकामे की। वास्तव में जिन विकपाजों की भगवान ने मनाही की है, वे सारी की सारी सामायिकों में चलनी रहती हैं। दूसरी बात—

तीस तीस वर्षों से लगातार सामायिक करके सूत्र सुनने वाले कई धावक लड़ने मगडने में, छल कपट करने में, झूठी गवाही मरन में लोभवश गरीबों का खून चूमने में एव नही करने योग्य काले काम करने में सबसे आगे रहते हैं।

ऐसी दशा में उनके बेटे-पोते सारा दोष सामायिकों पर मढ़ने हुए कहते हैं—देशो। इन अधिक सामायिक करने वाले धावकों के चरित्र। इनसे तो हम लाख दर्जे अच्छे हैं। चाहे कभी सामायिक नही करते किन्तु ऐमे अयाय, अत्याचार भी तो नही करते।

यद्यपि नवयुवकों का यह कहना कुछ अशों में सत्य है लेकिन ऐमे कह कर उन्हें सामायिक से विमुख न होकर स्वयं शूद्ध सामायिक करक वृद्धों के सामने आदर्श उपस्थित करना चाहिए एव अपने वृद्धों को बिनम्रता से समझाकर रास्ते पर लाना चाहिए।

प्रश्न ८— सामायिक में मन स्थिर क्यों नहीं रहता ?

उत्तर—इसका मुख्य कारण कलुपित वातावरण है। वहू से लड़नी लड़ती सास सामायिक कर लेती है, बाला व्यापार करता-

करता व्यापारी सामायिक में बैठ जाता है, रिद्वत खाता खाता राज
कर्मचारी मुँह बाँध लेता है। वसी प्रकार हाय घन हाय घन करता
हुआ श्रीमन्त सेठ सामायिक का वय पहन लेता है—अब ये सब कहते
हैं, क्या करें, मन नहीं टिकता। टिकगा भी कैसे, क्रोध आदि की
मदिरा पीकर जा आए हो। वह तो अपनी लहर अवश्य लाएगी ही।
अतः गुद्ध सामायिक, भजन, स्मरण एवं ध्यान करने की उमग रखने
वाले बंधुओं को दैनिक व्यवहार शुद्ध रखने का अधिकाधिक प्रयत्न
करना चाहिए।

प्रश्न ६—सामायिक किसलिए करने चाहिए ?

उत्तर—मात्र आत्म कल्याण के लिये सामायिक करने की
प्रभु आज्ञा है। इसके द्वारा धन, राज्य, स्वर्ग आदि की इच्छा कमी न
करनी चाहिए। भगवान् ने सामायिक का फल सावद्योगों से निवृत्त
होना कहा है^१। सावद्योग की निवृत्तिसे आते हुए कम सकते हैं
फिर शुभ भावों की प्रवृत्ति होने से पापकर्मों की निजरा होती है एवं
पुण्यों का बन्ध होता है फलस्वरूप स्वर्गादि के सुख मिलजाते हैं।
सम्भवतः एसी आधार पर ग्रन्थकारों ने कल्पना की है कि दो घड़ी
गुद्ध सामायिक करने से जीव ६२ करोड़ ५९ लाख २५ हजार ६२५६
पत्थोपम का देवायु बाधता है, अर्थात् इनने लम्बे काल के स्वर्ग के
सुखों की प्राप्ति होती है, यह एक सामान्य कल्पना है। सामायिक से
तो अनन्त आत्मिक सुख भी मिल सकते हैं^२।

१ उत्तर २६।८

२ अनन्तत्वप्रकाश (गुजराती) प्रकरण ५, पृष्ठ ४५६ के आधार से।

प्रश्न १०—लड्डू या रुपया-पसा देकर सामायिक बरवाई जाय तो ?

उत्तर—वास्तव में सामायिक आत्मा की शान्त एवं स्थिर अवस्था है। उसे त्यागो वैरागो व्यक्ति ही प्राप्त कर सकते हैं। लड्डू एवं घन के लोभी नहीं। घन या लड्डू देकर सामायिक की दलाली का धम कमाने के इच्छुक घनी-श्रावकों को श्रणिक और पूणिया श्रावक को कहानी यात्र कर लेनी चाहिए।

प्रश्न ११—सामायिक क समय जो वस्त्र आदि रखे जाते हैं वे व्रत में हैं या अव्रत में ?

उत्तर—भगवती ३१ के अनुसार सामायिक करते समय श्रावक का शरीर भी अधिकरण (छः काय का गस्त्र) है एवं अव्रत में है, तो फिर उसकी सुरक्षा के लिए रखे गए उपकरण-वस्त्रादि व्रत में कैसे हो सकते हैं ? (चूँकि वे अव्रत में ही हैं) अतः उनका जितना सकोच किया जाय उतना ही अच्छा है।

प्रश्न १२—क्या सामायिक तान करण तीन योग से हो सकती है ?

उत्तर—व्यवहार रूप में स्थूल हिंसा अमत्य आदि की अपेक्षा से हो सकती है* निश्चित रूप से नहीं। क्योंकि श्रावक सामायिक करते समय भी अन्न आदि में जमा रकम का व्याज लेता है। पुत्रादि के जन्म मरण पर हृष्य शोक का अनुभव करता है, अतः आम तौर पर दो करण-तीन योग से अर्थात् छः कोटि से ही सामायिक की जाती है।

यद्यपि त्याग छः कोटि से किये जाते हैं किन्तु (तेरापथ में) उनका पालन आठ कोटि से करने की परम्परा है, केवल मन का अनुमोदन

खुला रहता है। जैन-श्वेताम्बर स्थानकवासियों में कई श्रावक आठ कोटि पञ्चवक्त्राण करते हैं और कई छ कोटि श्रावकों के पीछे साधु भी आठ कोटि छ कोटि कहलाने लगे हैं। वरियापरी सम्प्रदाय आठ कोटि है एवं शेष प्राय छ कोटि है।

प्रश्न १३—सामायिक के कितने अतिचार हैं ?

उत्तर—पाच अतिचार कहे हैं—*

(१) मनादुष्प्रणिधान—मन से सावध-पाप युक्त विचार करना।

(२) वचन दुष्प्रणिधान—सावध वचन बोलना (लड़ाई भगडा करना, गृहस्थ को आओ चले जाओ, उठा बैठो, सो जाओ आदि आदि कहना तथा खुले मुँह बोलना ये सभी सावध वचन हैं)।

(३) कायदुष्प्रणिधान—काया में सावध प्रवृत्ति करना (बिना देखे, बिना पूजे शरीर को सकोचना या फलाना, बच्चों का गोद में लेना एवं स्तनपान कराना, खान-पान करना या करना, सज्जित पृथ्वी पाना आदि का सघट्टा करना आदि सभी प्रवृत्तियाँ सावध हैं)।

इन तीनों अतिचारों को विस्तार से समझाने के लिए ग्रन्थों में १० मन के १० वचन के १२ काया के ऐसे सामायिक के ३२ दोषों की कल्पना भी की गई है २ मन के दस दोष यथा—

(१) सामायिक के स्वरूप का न समझकर केवल मुँह बाघ कर बैठ जाना एवं समय असमय का रयाल न रखना अविवेक-दोष है।

१ उपासक दशा अ १

२ (क) अविवेक असो चित्तो जाभरती एवमयनियान्त्यी।

ससय रोस अविणयो, अबहुमाणए दोसा भावियन्था॥

(२) सामायिक करने से मेरी धन-कीर्ति होगी, लोग धर्मरत्ना कहेंगे एवं सकार करेंगे ऐसी भावना से सामायिक करना धन कीर्ति दोष है ।

(३) सामायिक करने से व्यापार में अच्छा लाभ मिलेगा, बीहरी रु जाएगी, विवाह जल्दी हो जाएगा रोग मिट जाएगा इन प्रकार भौतिक लाभ की इच्छा से सामायिक करना सामाध-दोष है ।

(४) मैं बहुत सामायिक करने वाला हूँ, मेरे मुख्य नियमित एवं गूढ़ सामायिक कौन कर सकता है ? एने सामायिक के विषय में अभिमान करना गव दोष है ।

(५) राज्य, पत्र या लेखकार आदि में बचने के लिए अथवा लोकनिष्ठा के मय से मुझ बाँध कर बठ जाना भय दोष है ।

(६) सामायिक के बढ़त में राज्यशुद्धि एवं स्वयं आन्ति की याचना करना निदान दोष है ।

(७) मैं सामायिक करना हूँ लेकिन मुझे इसका फल मिलेगा या नहीं—तेस सन्दिग्ध करना सगय दोष है ।

स—कृपण सहसाकरि, सख्त सख्त बलहृष ।

विगहा विहासो-मुट, निषेक्तो मुणमुणा दस बोसा ॥

ग—कुशासनं पलासगं चलाश्रिटी,

सावज्जकरिया सवणा कृपण पसारर्थं च ।

आनस मोहन मर - विमासर्ग

निहा वेपावच्यति भारत काव्योका ।

(सामायिक सूत्र, पृष्ठ १११४)

(८) लड़ाई मगडा होने पर हठ कर सामायिक में बठ जाना रोष दोष है ।

(९) सामायिक के प्रति आदर भाव न रखना अथवा सामायिक में देव-गुरु-धर्म की असातना करना अविनय दोष है ।

(१०) मन न होने पर भी किसी के दबाव से बेगार समझ कर सामायिक करना अचतुमान दोष है ।

वचन के दस दोष—

(१) सामायिक में कुत्सित अश्लील वचनों (च म भ आदि) का प्रयोग करना कुबचन दोष है ।

(२) बिना विचारे हानिकारक, सत्य को भंग करने वाला एवं अप्रतीतिकारक वचन बोलना सहसाकार-दोष है ।

(३) सामायिक में कामवृद्धि करने वाले ग दे गीतादि गाना एवं गन्दो बातें करना सच्छन्द दोष है ।

(४) सामायिक के पाठ को सधेप करके बोलना सक्षेप दोष है ।

(५) सामायिक में बलह उत्पन्न करने वाले वचन बोलना बलह-दोष है ।

(६) बिना किसी अच्छे उद्देश्य के अर्थात् केवल मनोरजन के लिये स्तुति, भक्तियोग, देशकथा, राजकथा कहने लग जाना विकथा दोष है ।

(७) सामायिक में हेतु-मगार करना या व्यगपण वचन बोलना

(८) सामायिक का पाठ (गुरुद्वि का ध्यान रखे बिना) जल्दी में अगुद्ध बोलना अगुद्ध-दोष है ।

(९) सामायिक के नियमों की परवाह न करके चाहे सो बोल जाना निरपेक्ष-दोष है ।

(१०) सामायिक के पाठ का गुरु उच्चारण न करके गुणगुनाते बोलना मुष्मन दोष है ।

कामा के चारह दोष—

(१) सामायिक में गुरु आदि के सामने अभिमान के आसन से (पर पर पैर चड़ा कर) बठना कुआसन दोष है ।

पदमासन, सिद्धासन, मुष्मासन आदि आसन सामायिक के लिए उपयुक्त हैं ।

(२) एक आसन में स्थिर न रह कर बार बार आसन बदलने-बदलासन दोष है । जहाँ तक हाँ सके सामायिक स्थिर आसन से करनी चाहिए ।

(३) दृष्टि को स्थिर न रख कर इधर उधर आँखें फाटना चलदृष्टि दोष है ।

(४) शरीर से सावयक्रिया करना या करवाना सावयक्रिया दोष है । बच्चों को गाद में लेना स्तनपान कराना आदि कार्य इसी दोष के अन्तर्गत हैं ।

(५) बुद्धावस्था या रोगादि किसी विशेष कारण के बिना दीवार आदि का सहारा लेकर बठना आलम्बन दोष है । ऐसे बठने से नोंद आने की सम्भावना रहती है ।

(६) बिना किसी विशेष प्रयोजन के हाथों-परो को सिबोडना-पसारना आकुञ्चन प्रसारण दोष है ।

(७) सामायिक में घटे हुए आलस्य करना, अगड़ाई लेना आलस्य-दोष है ।

(८) सामायिक में हाथों परो की अंगुलियों को घटकाना (कडका निकालना) मोडन दोष है ।

(९) सामायिक में शरीर का मूल उतारना मल दोष है ।

(१०) सामायिक के समय गाल पर हाथ लगाकर शोक-सतसक्त वचना तथा बिना पूजे शरीर को सुजाना एवं रात के समय इधर उधर फिरना विभासन दोष है ।

(११) सामायिक में नींद लेना-उघना निद्रा-दोष है ।

(१२) सामायिक में बेयावज्ञ करना या कराना ध्यावृत्त्य दोष है । कई आचार्यों ने इस स्थान पर कम्पन-दोष माना है । उसका अर्थ स्वाध्याय करते समय इधर उधर घूमना या हिलना अथवा शीत आदि के कारण कांपना है ।

यद्यपि मूल आगमों में सामायिक के ३२ दोषों का वणन दृष्टिगोचर नहीं होता । वहीं मात्र मन वचन काया से सावद्य कार्य करने का निषेध है । इस निषेध में सब दोषों का समावेश हो जाता है । दोषों के ३२ भेद पूर्वाचार्यों ने साधारण बुद्धिवाले मनुष्यों को समझाने के लिये किए हैं । अपेक्षामेद से इनकी सख्या घटाई बढ़ाई भी जा सकती है । अस्तु । सामायिक के तीन अतिचारों का विवेचन हो गया ।

(४) सामायिक स्मृति—अकरणता—मने सामायिक की है इस बात को मूल जाना या कितनी सामायिकों की हैं—यह विस्मृत कर देना अथवा सामायिक करना (प्रतिनापाठ बोलना) ही मूल जाना (इस अतिचार का मतलब सामायिक को सार-सम्माल न रखना है) ।

(५) सामायिक अनवस्थित करणता—सामायिक से ऊब कर सामायिक का समय पूरा हुआ या नहीं ऐस बार बार विचार करना घटी आदि देखना या समय समाप्त होने से पहले ही उठ जाना ।

इन सभी अतिचारों-दोषों से बचने हुए श्रावक को शुद्ध सामायिक करने चाहिए । सामायिक के समय श्रावक साधु के समान हो जाता है* यह जो कहा गया है वह निरतिचार सामायिक करने की अपेक्षा से है न कि मात्र मुँ बंद कर बठ जाने की अपेक्षा से ।

यद्यपि ऐसी शुद्ध सामायिक विरल ही कर सकते है, फिर भी असावधानीबश होन वाली श्रुतियों से घबराकर सामायिक न करने की भावना गिर से न लानो चाहिये किन्तु ज्याग से ज्याग शुद्ध करने का लक्ष्य बना कर सजग रहने का प्रयत्न करना चाहिए ।

अबोध बच्चों को जो सामायिकें करवाई जाती है व वास्तव में द्रव्य सामायिक ही हैं फिर भी सामायिक के सत्कार डालने की दृष्टि से उन्हें प्रेरणा दी जाती है ।

ग्यारहवाँ पुञ्ज

(१) प्रश्न—दसवाँ व्रत समझाइए ?

उत्तर—छठे व्रत में जो दिशाओं का परिमाण किया गया है उसका तथा सब व्रतों का सकोच करना दसवाँ देशाधिकारिक व्रत है। इस व्रत में दिशाओं का सकोच कर लेना पर मर्यादा के बाहर की दिशाओं में आकर हिंसा भूठ, चोरी, अबह्याचय परिग्रह आदि आसक्तियों का सेवन न करना चाहिए तथा मर्यादित दिशाओं में जितने द्रव्यों की (सातवें व्रत में) मर्यादा की है उसके उपरान्त द्रव्यों का उपभोग न करना चाहिए^१। यह व्रत दो करण तीन योग से किया जाता है। इस व्रत की साधना करने के लिये थावक को प्रतिदिन चौदह नियम धारण करने चाहिए।

(२) प्रश्न—चौदह नियम कौन कौन से हैं और किस तरह धारे जाते हैं ?

उत्तर—चौदह नियम धारण करने वालों को—यह निम्नलिखित एक गाथा अवश्य याद कर लेनी चाहिए। मया—सच्चित्त द्रव्य विगाह, पन्नी तबोल वत्थ कुसुमेसु। वाहण सयण विलेशण यम दित्तिन्हाण भत्तेसु^२। इस गाथा में चौदह नियमों के नाम हैं। विवेचन नीचे पढ़िए—

१ सच्चित्त—जीव सहित वस्तु को सच्चित्त कहते हैं। इस नियम

१ हरिभद्रीय—आवश्यक प्रत्याशयानाप्ययन पृष्ठ ८३०।

२ धर्म सग्रह—अधिकार ३।

मे खाने-पीन के काम मे आनेवाली सचिप्त वस्तुओं की मर्यादा करनी चाहिए । जैसे आज मं इतनी () सख्या से अधिक सचिप्त वस्तुएँ न खाऊँगा-पीऊँगा एक अमुक परिमाण से अधिक सचिप्त पृथ्वी-पानी अग्निवायु वनस्पति का आरम्भ न करूँगा ।

(२) द्रव्य—इस नियम मे खाने-पीन के द्रव्यों का परिमाण करना चाहिए । जैसे आज मं इतने () द्रव्यों से अधिक द्रव्य उपयोग मे नही लूँगा ।

(३) विगय—इस नियम मे विगय की मर्यादा करनी चाहिए । जैसे—आज मं इतने () विगय से अधिक न लगाऊँगा ।

(४) पन्नी—इसमे जूने खडाऊँ आदि की मर्यादा की जाती है । जैसे—मं आज इतने () जोड़ों से अधिक जूते आदि न पहनूँगा ।

(५) ताम्बूळ—इसमें पान-सुपारी आदि मुँह साफ करने की चीजों की मर्यादा की जाती है । जैसे—ताम्बूळ सम्बन्धी चीजें इतनी () सख्या से अधिक उपयोग मे न लूँगा ।

(६) वस्त्र—इसमे पहनने ओढ़ने आदि के वस्त्रों की मर्यादा है । जैसे अमुक () सख्या या अमुक प्रकार के वस्त्रों से अधिक वस्त्र न पहनूँगा और न ओढ़ूँगा ।

(७) कुसुम—इसमें फूल इत्र आदि सूघन की चीजों का परिमाण है । जैसे—अमुक () सख्या से अधिक चीजें न सूघूँगा ।

(८) वाहन—इसमे सवारियों का परिमाण है । जैसे अमुक () सख्या से अधिक हाथी घोडा, मोटर आदि सवारी पर न चढ़गा ।

(६) शयन—इसमें खाट, पलङ्ग, चटाई, दरी आदि विद्यमान की वस्तुओं का परिमाण है। जैसे—अमुक () सख्या से अधिक शयन आसन काम में नहीं लूगा।

(१०) विलेपन—इसमें केसर, चन्दन रत्नो, क्रीम, पाउडर आदि की मर्यादा करनी चाहिए। जैसे—अमुक () सरया से अधिक विलेपन के पदाथ उपयोग में न लूगा।

(११) व्रह्मचय—इसमें ब्रह्मचय का त्याग या मर्यादा करनी चाहिए तथा कामोद्दीपक नाटक सिनमा आदि के त्याग एवं शृंगार के हेतुमून आमूषण पहनन का त्याग या परिमाण करना चाहिए।

(१२) दिशा—इसमें छद्मों दिशाओं में इतने इतने () फोर्सों से अधिक न जाऊगा ऐसा त्याग करना चाहिए।

(१३) स्नान—इसमें स्नान का त्याग या मर्यादा करनी चाहिए। दण कषी तथा हजामत और उनके साधन भूत उस्तरा ब्लेड आदि की मर्यादा भी इसी के अन्तगत की जा सकती है।

(१४) भक्त—इसमें भोजन की मर्यादा करनी चाहिए। जैसे—इतनी बार () से अधिक भोजन न करूगा। इतन घरों से अधिक खाने के लिए न जाऊगा। (द्रव्य आदि का विज्ञेय वर्णन पुत्र ८ प्रश्न ३ में आगया है) चौन्ह नियम धारने वाले को तीन प्रकार के व्यापार का मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिए। ये इस प्रकार हैं— १ अक्षिकम २ मसिकम ३ वृषिकम।

(१) तलवार आदि शस्त्रों से आजोविका करना अर्थात् पुच्छ या सेना को नोकरी करना असिक्कर्म है ।

(२) लेखा पट्टी द्वारा यानी व्यापार द्वारा आजोविका करना मसिक्कर्म है । (मसि का अर्थ स्याही है) ।

(३) कृषि (खेती) से आजोविका चलाना कृषिक्कर्म है ।

उपयुक्त नियमों के अलावा काल की मर्यादा करके जो भी त्याग किए जाय वे सब दसवें व्रत में गिने जाते हैं । जैसे नवकारसो-धोरसी एकासन उपवास यावत् छ मास तक की तपस्या करना । अमुक अमुक तिथियों में चौविहार करना, रात्रि भोजन, हरोचोड, अशुभक्य एवं व्यापार आदि त्यागना, घड़ी-ने घड़ी मौन करना, सा पीकर पोखली आदि श्रावणवत् सवर-शौच करना ।

पौच अणुव्रत, तीन गुणव्रत यावज्जीवन के लिए बरत होते हैं और ये सामायिक-देशावकाशिक आदि अमुक समय तक के लिये किये जाते हैं । यदि पिछले आठों व्रत बर-दो बर के लिए किए जाएँ तो वे दसवें व्रत में मान जाते हैं ।

यदि दो-तीन सामायिकों में एक साथ ली जाएँ तो नौवा व्रत न होकर दसवा हो जाता है । यहाँ यह भ्रमन कर लेना चाहिए कि प्रतिदिन एक सामायिक के नियम वाला व्यक्ति यदि दो सामायिक एक साथ पञ्चवक्त्र ले तो उसके सामायिक का नियम कस पला ? दोनों ही व्रत हैं एष दुपुना सवर किया है, अतः उसके सामायिक का नियम पल गया ऐसे माना गया है ।

(३) प्रश्न—"मैं व्रत के अतिचार कौन-कौन से हूँ ?

उत्तर—पाँच अतिचार हैं—आनयन प्रयोग २ प्रेष्यवण प्रयोग, ३ शब्दानुपात, ४ रूपानुपात ५ बहि पुद्गलप्रक्षेप ।

(१) मर्यादित क्षेत्र के बाहर से कुछ लाता हो तो व्रत भग के भय से स्वयं न जाकर दूसरे व्यक्ति से वस्तु मगवाना आनयनप्रयोग अतिचार है ।

(२) मर्यादित क्षेत्र से बाहर दूसरे के पास कोई वस्तु भेजना या नौकरादि को भेजकर अपना काम करवाना । प्रेष्यवणप्रयोग अतिचार है ।

(३) मर्यादित क्षेत्र से बाहर न जा सकने पर छोक, खाँसी या खलारादि द्वारा दूसरे को बुलाना या अपना आशय समझाना शब्दानुपात अतिचार है ।

(४) मर्यादित क्षेत्र से बाहर रहे हुए व्यक्ति को अपना रूप दिखाकर यानि शारीरिक चेष्टा कर के बुलाना या कुछ सूचना देना रूपानुपात अतिचार है ।

(५) मर्यादित क्षेत्र से बाहर प्रयोजनवश अपना भाव जताने के लिए डेला पत्थर आदि फकना बहि पुद्गलप्रक्षेप—अतिचार है ।

पूरा विवेक न होने से तथा सहसाकार-अनुपयोगादि से पहले दो अतिचार हैं और मायापरता एव व्रत सापेक्षता से पिछले तीन अतिचार हैं । इन सभी अतिचारा से श्रावक को दूर रहना चाहिए ।

धारहर्वा पुञ्ज

(१) प्रश्न—ग्यारहवा पीपघोषवास व्रत समझाइए ?

उत्तर—धम की पुष्टि करने वाले व्रत में निवास करना पीपघो-
षवास व्रत है। पीपघ चार प्रकार का है*—

१ आहारपीपघ २ शरीरपीपघ ३ ब्रह्मचय पीपघ ४ अब्या
पार पीपघ।

(१) चौबिहार उपवास करना सबत आहारपीपघ है तथा नव
कारसो पोरसो आदि करना दशन (आगिक रूपसे) आहारपीपघ है।

(२) स्नान, उद्वटन विलेपन गन्ध पुष्प वस्त्र एवं आभूषणो से
शरीर को अश्रुत करने का त्याग करना शरीरपीपघ है। समूचा
त्याग करना सबत शरीरपीपघ है एवं यथाशक्ति कुछ-कुछ त्याग
करना देगत शरीरपीपघ है।

(३) अब्रह्मचय का त्याग करना ब्रह्मचयपीपघ है। इसके भी
देशत —सबत दो भेद हैं।

(४) कृषि—वाणिज्य आदि सावद्य व्यापार का त्याग करना
अव्यापारपीपघ है। इसके भी पूर्ववत दो भेद हैं।

यह चारों प्रकार का पीपघ यदि देशत किया जाय तो दसवा
व्रत होना है तथा सबत अर्थात् (कम से कम एक दिन-रात के लिए)
दो करण-नीन योग स ये चारों त्याग किये जाय तो ग्यारहवा प्रति
पूणपीपघोषवासव्रत कहलाता है। सामान्यवत इस व्रत को भी

ग्रहण करते समय नवकारमन्त्र के उच्चारणपूर्वक तीन क्षर गुह्य वन्दना करके पूर्व-उत्तर की तरफ मुँह कर के फिर प्रभु की (साधु साध्वियाँ हो तो उनकी) आज्ञा लेकर निम्नलिखित पाठः बोलना जाता है—

पोष के नियम प्रायः सामायिकवत् हैं। कुछ फर्क है, जैसे— सामायिक का समय एक महत है और पोष का आठ प्रहर है। सामायिक में सोने का नियम है किन्तु पोष वाला विधिपूर्वक सोता है। किन्तु सोने का मतलब यह नहीं कि वह दिन रात पड़ा ही रहे। उन विधिपूर्वक प्रतिक्रमण करके या सुनके रात के समय अधिक से अधिक धम जागरण करना चाहिए। पुराने जमाने में श्रावक पोष के समय बहुत कम सोया करते थे। कामदेव एवं चुलनीपिता श्रावक पोष में रात्रि समय धम जागरण कर रहे थे, उस समय उनकी परीक्षा करने देवता आए थे। (आजकल धम जागरण करने वाले श्रावक बिरले ही मिलेंगे) ।

ॐ एकाइसम पडिपुन्नपोसहोववासवय, असण, पाण खाइम, साइम पच्चक्षणाण अरम पच्चक्षणाण उम्भुद्धणि, सुवन्न—पच्चवखणं, माला वनग, विलेशण पच्चवखणं सरथ मुमळाइय सावजजोग सेवण, पच्च पखण आव अहोरत्तं पञ्जुशासामि दुविह विविहेणं न करेमि न कारवेमि मग्गमा वयसा कायया तस्स भत्ते । पडिक्कवामि विन्तामि परिहामि घट्टपारं चोत्तरामि ।

१ पोष का पाठ न आता हो तो दूसरों से उक्त पाठ सुनना चाहिए ।

प्रश्न २—पौष में ओढ़ने विद्याने के बन्ध रखने की क्या विधि है ?

उत्तर—छई के विद्योने तथा तक्रिये आदि नहीं रखे जाने । मुह रत्ति, पूजणी, घोती कबल एव चदर आदि जो उपकरण रखे जाते हैं उनका सुबह शाम दोनों समय पडिलेहण किया जाता है । वह भी सावुजो की तरह विधिपूर्वक करना होता है । अविधि से सडे सडे पडिलेहण करना नियम विरुद्ध है । यद्यपि पौष में रखे हुए उपकरण अवत में हैं फिर भी उनका पडिलेहण करना असावधानीवश उनके द्वारा हुई जोर्वाहिमा की आलोचना प्रतिक्रमण करने के लिए है । इन पडिलेहण करते समय उनमें से बीज हरित कीडे आदि के कलेवर निकले तो उनका गुदों से प्रायश्चित्त लेना चाहिए ।

प्रश्न ३—श्रावण की महीने में कितने पौष करने चाहिए ?

उत्तर—शास्त्रों के वणनों को पढ़न से मालूम होता है कि पुराने जमाने के श्रावण आठम-चौदस एव अनावस-पूनम ऐसे एक मास में छ दिन उपवास (दो उपवास-दो बेले) करके प्रतिपूण (अष्ट प्रहरी, सोलह प्रहरी) पौष किया करते थे । उत्तरा० ५।२३ में कहा है कि श्रावण को एक महीने में दो पौष करने चाहिए । परिस्थितिवश कदाच दो न बन सकें तो एक पौष ही करना उसके लिये अत्यन्त आवश्यक है ।

आजकल बारह दिन धारने वाले कई श्रावण एक वष में एक अष्ट प्रहरी पौष करने का नियम लेते हैं आर कई तो एक से भी आना कानी करते हैं अर्थात् चतुष्प्रहरी (चौमहरिया) पौष से ही ग्यारहवें व्रत को मना लेते हैं । कहीं तो मास में छ अथवा दो

वहाँ ग्यारह मास में एक पीपल और वह भी चतुष्प्रहरी, कमशारी की भी १० हो गई ।

शाम्भव में पीपल अष्टप्रहरी ही होता है किन्तु श्रावण का भी कमशारी देगलर सम्भवतः "सम पित इज घेटर देन नयिण" की उत्पत्ति का अनुसरण करते आचार्यों ने चतुष्प्रहरी पीपल को भी मान्यता दे दी एवं आञ्जल अष्टप्रहरी की अपेक्षा चतुष्प्रहरी पीपल ही अधिक होने लगे हैं ।

चतुष्प्रहरी पीपल भी कई लोग पानी पीकर करते हैं किन्तु उन्हें सोचना चाहिए कि पानी पीने से तो वास्तविक पीपल (ग्यारहवाँ घन) होता ही नहीं, दमर्चा दगायनागिक सवर होता है ।

प्रश्न ४—पीपल के अतिचार समझाए ?

उत्तर—पीपल अतिचार है । उनसे सवन से पीपल दूषित हो जाना है अतः अतिचारों से बचकर शुद्ध पीपल करना चाहिए । अतिचारों का विवेचन इस प्रकार है ।

१—अप्रतिरोक्षित शुष्प्रतिरोक्षित गण्ड्या सस्तारण—पीपल के समय काव से लिए जाने वाले गण्ड्या-सपारे का पट्टि-दुष्ण से बचना अथवा अविधि से बचना पहला अतिचार है ।

२—अप्रमाजित शुष्प्रमाजित गण्ड्या सस्तारण—गण्ड्या-सपारे पर उड़ने-माला तथा अन्य आदि से बचना या अविधि से बचना दूसरा

नोट—अतिचारों का प्रश्न २०, सूत्र अंग २ अ २ तथा विचारक अंग २ के अनुसार ।

श्री १—अप्रमाजित गण्ड्या सस्तारण

अतिचार है। गद्या का अथ स्थान एवं सधारे का अथ विद्यान के पास बम्बल पाट आदि से है।

३—अप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखित उच्चारप्रत्ययणभूमि—मल मूत्र आदि परठन के स्थान को न देखना या दान्यता से देखना तीसरा अतिचार है। पौष्य वाले को नाजी-ट्टी आदि में मल मूत्र का परि त्याग करना नजी कल्पना अतः उसके लिए स्थान को विधि पूर्वक देखना जरूरी है।

४—अप्रमाजित दुष्प्रमाजित उच्चारप्रत्ययणभूमि—मल मूत्र परठन के स्थान को न पूजना या अविधि में पूजना चौथा अनिचार है। (मल मूत्र परित्याग करने से पहले स्थान को पूजना परमावश्यक है) पौष्य में पूजनी आदि न रखने वाले थावकों को यहाँ कुछ विचार करना चाहिए।

५—पौष्योपवास का सम्यक् अपालन—आगमोक्त विधि से हियर चित्त हाकर पौष्योपवास का पालन न करना अर्थात् पौष्य में आहार, शरीर शुश्रूषा अग्रहचय तथा सावद्य व्यापार का अभिग्राह्य करना पाँचवाँ अनिचार है।

पहले चार अनिचार द्रवों के प्रमाद बंपरवाही की अपेक्षा से है और पाँचवाँ भावना दूषित होने की अपेक्षा से है।

प्रश्न ५—पौष्य के अठारह दोष कौन कौन से हैं ?

उत्तर—यद्यपि दो करण-तोन योग से त्याग किए हुए जिनन में सावद्य काय किए जाय वे सभी पौष्य के दोष हैं, फिर भी

साधारण बुद्धि वालों को विशेष सावधान करने के लिए प्राचीन ग्रन्थकारों ने पौष के निम्नलिखित अठारह दोष बताए हैं ?—

१—पौष के निमित्त ठूस-ठूस कर सरस आहार करना ।

२—पौष की पहली रात्रि में अन्नह्यय सेवन करना ।

३—पौष के लिए नख केश आदि का सस्कार करना (हजामत बनवाना) ।

४—पौष के ख्याल से वस्त्रादि धोना या धुलवाना ।

५—पौष के लिए शरीर का मण्डन करना (चन्दन वेशर मेहदी आदि लगाना) ।

६—पौष के निमित्त आमूषण पहनना ।

ये छ' दोष पौष के निमित्त पौष करने से पहले लगाए जाते हैं । इनसे श्रावक को बचना चाहिए अर्थात् पौष के लिए ये सावध काय न करने चाहिए । अब पौष लेने के वान्त वजने योग्य बारह दोष—

१—पौष में दूसरे की बेयावच्च (हाथ पर दवाना) करना या दूसरे से करवाना ।

२—शरीर का मैल उतारना ।

३—बिना पूजे शरीर खुजलाना या दीवार आदिका सहारा लेना ।

४—अकाल में निद्रा लेना यानि दिन में सो जाना, रात को प्रथम प्रहर में नींद लेना तथा पिछली रात्रि को उठकर धम जागरण न करना ।

५—बिना पूजे मल मूत्र आदि परठना ।

६—निन्दा विषया एव हसो मजाक करना ।

७—सप्तारिक बातों को चर्चा करना ।

८—स्वयं डरना या दूसरों को डराना ।

९—कलह (लड़ाई झगड़े) करना ।

१०—खुले मुँह अथवा से बोलना ।

११—स्त्री के अङ्ग-उपाग (राग-दृष्टि से) निहारना ।

१२—काका-मामा आदि साप्तारिक सम्बन्धों के नाम से पुकारना ।

प्रश्न ६—पौषव के समय श्रावक को क्या करना चाहिए ?

उत्तर—मोह लोभ, मय आदि सब बच कर अधिकाधिक समय में लीन रहना चाहिए । चुलनीपिता श्रावक का माता के प्रति मोह करने से, सुरादेव श्रावक का रोगों के मय से तथा चुल्लसतक का घन के प्रति लोभ करने से पौषव व्रत दूषित हो गया था ।

इनका व्रत उपासकदशा सूत्र में है ।

प्रश्न ७—चुलनीपिता आदि श्रावकों को कहानी सुनाइये ?

उत्तर—उनका संक्षिप्त जीवन इस प्रकार है ।

चुलनीपिता—बनारस में चौबिस करोड सोनयों एव आठ गोकुल (दस हजार गायों का एक गोकुल) का स्वामी चुलनीपिता गाथापति (गृहस्थ) रहता था । भगवान महावीर का पदापण हुआ । बाणी सुन कर चुलनीपिता ने श्रावक के व्रत ग्रहण किए । एक दिन जब वह पौषवशाला में पौषव करके अधरात्रि के समय धमजागरण कर रहा था । एक देवता प्रकट होकर कहने लगा यदि तू अपने व्रत नियम धम को नहीं छोड़ेगा तो तेरे ज्येष्ठ पुत्र को मार कर उसके

तीन टुकड़े करके उन्हें सबाते हुए तेल में डारूंगा एवं उसका मांस व खून तेरे शरीर पर छिड़ूंगा जिससे तू आनन्द्यात्मक अकाशमरण को प्राप्त हो जायगा। देव ने, इस प्रकार दो-तीन बार कहा, श्रावण सुदृढ़ रहा। देवता ने उसके ज्येष्ठ पुत्र को मारा एवं तेल में तप्त कर मांस खून से चुलनीपिना के शरीर को सींचा, फिर भी श्रावण न डोला। देवता ने दूसरे तीसरे पुत्र को भी पूववत् मार, वाट कर मांस खून छिड़वा फिर भी चुलनीपिना का एक भी न चला। आखिर देव ने उसकी पूज्य माता भद्रा को मारने का दो-तीन बार ऐकान किया। माता के मोहवश श्रावण विचलित हो गया। उस देव को पकड़ने के लिये ज्योही स्वप्न हुआ देवता आकाश में उड़ गया एवं उसके हाथ में एक लम्बा बाधा। उसे पकड़ कर वह जोर जोर से बिल्लाने लगा। जाग कर माता आई, उसने पुत्रमरण आदि का सारा हाल सुनाया। माता न कदा तेरे तीनों पुत्र सानन्दता रहे हैं। तेरे व्रत—नियम को परोक्षा करने कोई देवता श्राया था, किन्तु तूने मोहवश अपने पौपत्यत का भङ्ग कर लिया।

चुलनीपिता व्रतमद्ग का प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हुआ। अन्त में गमारह पडिमाए धारण की एवं समाधिमरण में मर कर प्रथमस्वर्ग के अरुणप्रभ विमान में चार पत्न्योपम आयुष्यवाला देव हुआ। वहाँ से च्यव कर महाविभेह क्षोभ में जन्म लेगा और उसी भव में मोक्ष जायगा।

सुरादेव श्रावक—वनारस नगर में सुरादेव गाथापति रहता था। उसके अठारह करोड़ सोनये एवं छह गोकुल थे। भगवान् महावीर के निकट उसने व्रत स्वीकार किए। एकदा वह पौषव करके धम-ध्यान में लीन हो रहा था अघरात्रि के समय प्रकट होकर एक दब ने कहा—या तो अपने व्रत निषम छोड़ दे अन्यथा तरे तीनों पुत्रों को मारकर उनके पाच-पाँच टुकड़े करूँगा यावत् मास, खून, तरे शरीर पर छिन्कूँगा। श्रावक निश्चल रहा। देव ने क्रमशः ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ तीनों पुत्रों को मार कर उनका मास खून से सुरादेव का शरीर सींचा किन्तु भी बुरा विचलित न हुआ। तब देव बोला, यदि तू धम नहीं छोड़ेगा तो अब तेरे शरीर में श्वास, काश, ज्वर दाह आदि सोलह रोग उत्पन्न करता हूँ। रोगों के भय से मयमौत होकर सुरादेव उसे पकड़ने दौड़ा, देवता भागा एवं उसके हाथ में स्वप्ना एक आया तथा चिल्लाने पर उसकी स्त्री धन्या न देवमाया का रहस्य समझाया। पौषवव्रत भङ्ग होने के कारण वह दण्ड लेकर गुद्ध हुआ एवं सत्सना सधारा करके प्रथमस्वर्ग के कदणकान्त विमान में चार पल्लोपम आयु वाला देवता हुआ। भवान्तर महाविन्ह क्षेत्र में मोक्ष आया।

चुल्लगतक—आठमिका नगरी में चुल्लशतक गाथापति था। उसके पास अठारह करोड़ सोनये एवं छह गोकुल थे। भगवान् महावीर के पास उसने व्रत लिए। पौषव करते समय व्रत से डिगाने के लिये एक देवता ने उसके तीन पुत्र मारे एवं सात मास टुकड़े करके उसके शरीर को मास, खून से सींचा। किन्तु वह निश्चल रहा। तब अन्त में देवता ने उसके १५ करोड़ सोनयों की बाजारों में फलाने

की धमकी दी । घन के लोम में वह थायक उठ खड़ा हुआ । देवता अदृश्य हो गया अब स्त्री द्वारा देवमाया का रहस्य बतलाने पर उसने घतमङ्ग का प्रायश्चित्त लिया । अन्त में समाधिमरण को प्राप्त होकर प्रथम स्वर्ग के अक्षयसिद्ध विमान में देव हुआ। वहाँ से महाविद्वह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जाएगा ।

तेरहवाँ पुञ्ज

(१) प्रश्न—बारहवाँ व्रत समझाइए ?

उत्तर बारहवाँ अतिथि सविभाग व्रत है । जिसके भिक्षाय आने की कोई तिथि समय निश्चित नहीं है ऐसे त्यागी साधु का नाम अतिथि है । अपन लिये बनो हुई वस्तु का सम्भव विभाग हिस्सा करके अर्थात् स्वयं सकोच करके अतिथि को देना अतिथिसविभाग व्रत है । इसका दूसरा नाम यथामविभाग व्रत भी है ।

इसमें थायक प्रतिज्ञा करता है कि मैं पाँच महायतधारी साधुओं को उनके कल्प के अनुसार तिनोप—१ अन्न—रोटी, दाल भात आदि २ पान—पीने योग्य पानी आदि द्रव्य ३ खादिम—फल मेवा मिठाई आदि ४ स्वादिम—पान-मुपारी इलायची आदि मुख को सुवासित करने वाली चीजें, ५ वस्त्र—फपडे, ६ पात्र—आहार, पानी रखने के लिये लकड़ी मिट्टी आदि के बरतन, ७ कम्बल—ऊनी वस्त्र आदि, ८ पादप्रोच्छन—पग पौछन का वस्त्र खण्ड ९ पीठ—बाजोट, चौकी, १० फलक—सोने के लिये लम्बा पाट, ११ शय्या—मकान १२ सयारा—विद्वाने के लिये घास-तृण आदि, १३ औषध—

सौंठ पीपर आदि एक दवा १४ भेषज—अनेक औषधियाँ मिलकर बने हुए घण, मिक्चर, गुटिका आदि। ये घोंह प्रकार का दवा निष्काम बुद्धिपूर्वक आत्मकल्याण की भावना से देता हुआ विवर्ण १।

ग्यारह व्रत तो अपने हाथ की बात है, जब भी दृष्टा जा सिद्धि जा सकते हैं। (अडाई द्वीप से बाहर असह्य तिर्यकच—थावक मान गये है वे भी ग्यारह व्रतों का पालन करते है १)। लेकिन वाग्देव व्रत का लाभ मिलना कठिन है।

नोट १—हरिमन्त्रोप आवाग्यक, प्रत्याख्यानोप्ययन—पृष्ठ ५३९ तथा पचासक गाथा २५ से ३२ के आधार से।

२—(क) थावक धर्म की विरायना करके कई मनुष्य असह्यातई अरुणवरद्वीप में विद्यमान असह्यातयोवनविस्तार वाले मानसरोवर में मत्स्य आदि जलचरों के रूप में उत्पन्न होते हैं। सरोवर के निकट रत्नों का धूमि एवं सिंहासन मद्रासन बिछे हुए हैं। वहाँ ज्योतिषी देवता मोक्षा करते हैं। उन्हें देखकर जलचरों को जातिस्मरण ज्ञान होता है एवं पिछले भव में तोटे हुए थावक के ग्यारह व्रतों को पुन ग्रहण कर लेने हैं। पानी में रहते हुए भी वे स्थिर रहकर सामायिक सवर एवं पीपक करत हैं किन्तु वहाँ साधु न होने से ग्यारहवें व्रत का लाभ उन्हें नहीं मिल सकता। (मन सत्त्व प्रकार गजराती प्रकरण ५ पृष्ठ ४७० के आधार से।

(ख) औपपातिक व्रत २० में जलचर खेवर-स्फलवर को ही हा प्रकार के त्रिपञ्च जातिस्मरण द्वारा थावक-व्रत ग्रहण करत है—रूडे कहा है।

चित्त वित्त पात्र तीनों का मुयोग होने पर ही यह व्रत होता है ।
 चित्त—देन की भावना शुद्ध हो वित्त—वस्तु शुद्ध सूझती हो और
 पात्र—लेने वाले साधु शुद्ध पंचमहाव्रतधारी हों—इन तीनों में से एक
 भी अशुद्ध हो तो बारहवाँ व्रत निष्पन्न नहीं होता । चित्त वित्त
 पात्र को समझने के लिये श्री मिश्रस्वामी का दिया हुआ 'हलुए' का
 दृष्टान्त हृद्यगम करना चाहिये ।

प्रश्न २—सुपात्रान की भावना कैसे मानी चाहिये ?

उत्तर धावक को अपने घर के द्वार बन्द न रखने चाहिये ।
 साधुओं के लेन योग्य जो भी वस्तुएँ अपने घर में हों, सूझती ररानी
 चाहिये (असूझता को सूझती करके देना दोष है) सहज में साधुआ
 के दान ही तो गोचरों की विनती करनी चाहिए एवं योग मिलने पर
 उल्ट भाव से बहराना चाहिए । साधुओं के पधारने की समावना
 हो तो पहले भोजन न करना चाहिये । साधुओं को बहराने के बाद
 वस्तु कम रह जाये तो सकोध कर लेना चाहिये किन्तु दुबारा न
 बनानी चाहिये । वस्तु बनाने समय साधुओं का स्मरण करके अधिक
 न बनानी चाहिए एवं भोजन करते समय साधुओं को न मूलना
 चाहिए यानि ऐसी भावना रखनी चाहिए कि इस समय साधु पधार
 जाय तो खान से पहले अपने हाथों द्वारा कुछ दान देकर लाम कमाऊ ।
 साधुओं को आते देखकर सामन जाना और वापिस पहुँचाने जाना भी
 आगम में वर्णित है ।'

प्रश्न ३—ज्ञान किसने प्रकार के है ?

उत्तर दस प्रकार के माने गए हैं । (१) अनुकम्पादान, (२) सप्रज्ञान (३) भयदान (४) कारणज्ञान (५) लज्जादान (६) गौरवदान (७) अधमज्ञान (८) धमदान (९) वरिष्यतिदान (१०) कृतज्ञान* ।

(१) कृपण-शून्य-अनाथ आदि पर अनुकम्पा करने जो कुछ दिया जाता है वह अनुकम्पादान है ।

२ सफट के समय सहायता प्राप्त करने के लिये किसी को कुछ देना सप्रज्ञान है ।

(३) राजा मन्त्री पुरोहित आदि के भय से अथवा भूत पिशाच ग्रहदगा आदि के भय से किसी को कुछ देना भयदान है ।

(४) मृतकों व पीछे मृत्यु भाजन करना या ब्राह्मण आदि को कुछ देना कारण-दान है ।

(५) मन न हाने पर भी समाज के दबाव से कुछ दे देना लज्जादान है ।

(६) वग, कीर्ति के लिये नटों पहलवानों अथवा स्वजन मित्रों को कुछ देना गौरवदान है ।

(७) गिना, झूठ, चोरी, परस्परमन और परिग्रह में आसक्त व्यक्तियों को यदि कुछ दिया जाय तो वह अधमदान है ।

(८) जिनके लिये तृण और मणि मोती एक समान है—ऐसे सुवात्रा (भायुओं) को कुछ देना धमदान है । यह दान अण्य अनुल

और अनन्त है। धर्मदान के तीन भेद भी किये गये हैं—ज्ञानदान, अभयदान और सुपात्र दान।

(६) भविष्य में प्रत्युपकार को आशा से किसी को कुछ दान करिष्यातिदान है।

(१०) पहले किये हुए उपकार का बदला चुकाने के लिये किसी को कुछ दान कृतदान है अथवा प्रत्युपकारदान है।

इन दसों दानों में धर्मदान के सिवा नव दान सार्विक हैं। यद्यपि श्रावक को समय समय पर सभी करने पड़ते हैं, किन्तु इनमें धर्म पुण्य न मानना चाहिये।

सुपात्र दान देने का अधिकाधिक प्रयत्न करना चाहिये किन्तु सुपात्रों को जो भी वस्तु दी जाय वह बिल्कुल शुद्ध (ब्यालीस दोषों से रहित) होनी चाहिये। शुद्ध दान देकर धन्य सार्धवाह, सुबाहु कुमार, शंख यशोमती, धन्ना शालिभद्र आदि अनेक जीय तर गए हैं।

प्रश्न (४) आहारानि के सिवा क्या और भी कोई चीज का दान होता है

उत्तर—हाँ। आगम में शिष्य—मिक्षा का वणन भी मिलता है*। अन्न पुत्रादि को दीक्षा की आज्ञा देना भी बहुत बड़ा दान है। अनुभवियों के कथनानुसार आहार का दान सबसे पहला है। आहार से पानी का दान कठिन है, क्याकि रोटो प्रत्येक घर में बनती है, पर पका (अचित्त) पानी नहीं बनता।

* मगवती ६। ३३ अनालि के वर्णन में 'सम्हेभ देवानुत्थियं सीध भिरत्त दण्यामो' ऐसा पाठ है।

पानी की क्लेशा वस्त्र का गान दुष्कर है । कारण रगोन एवं मिल हुए वस्त्र साधु नहीं पढ़ने । वस्त्र से भी दाया-मकान का दान मुश्किल है । क्योंकि साधु क रहने योग्य मकान हर एक के यही मांगे नहीं मिल सकता । ये विष्टले सभी दान क्रमण दुष्कर है । किन्तु अपने पुत्र—पुत्री आदि का गुरु-धरणी में दान करना दुष्कर-दुष्कर एवं महादुष्कर है ।

(५) बारहवें धन के अतिचार वतलाश्ये ।

उत्तर—पांच अतिचार माने गये हैं ।

(१) सचित्तनिषेध —साधुओं को नहीं देने की भावना से उनके लेने योग्य अचित्त वस्तु का सचित्त (पृथ्वी पानी, बीज आदि) पर रज देना ।

(२) सचित्तपिपान —साधु को नहीं देने की भावना से अचित्त वस्तु को सचित्त फल आदि से दन देना ।

(३) कालातिक्रम —साधु को नहीं देने की भावना से काल अतिक्रमण करना अर्थात् मित्रा के समय से पहले जीम लेना या बाद में रसाई आदि बनाना ।

(४) परव्यपण —साधु को नहीं देने की भावना से अपनी वस्तु को दूसरे की बता देना ।

(५) मत्सखिता—दूसरे की दान देता देवहर प्रतिस्पर्धा करना यानि जससे बड़ा दानी कहलाने के लिए अधिक दान देना, अथवा साधु द्वारा वस्तु मांगने पर क्रुपित होना तथा कषाय फलुपित चित्त से

(नही दूंगा तो साधु मेरी निन्दा करेंगे या मैं नहीं दूंगा तो बेचारे ये भूले मरेंगे, ऐसे सोचते हुए) दान देना ।

इन सभी अतिचारों से बचकर श्रावक को बारहवें व्रत की सच्ची आराधना करना चाहिए । बारह व्रतों का पालन करके अनेक जोष संसार समुद्र से तर गये हैं । आनन्द आदि दस श्रावक तो इन व्रतों के प्रताप से भवान्तर में मोक्षगामी हो बन गए ।

व्रतधारी श्रावकों को क्रमशः स्थाग वैराग्य बढ़ाते हुए संसार की मोह माया से दूर होना का प्रयत्न सत्ता चालू रखना चाहिये । एक पुत्रादि के योग्य कायवर्त्ता हो जाने के बाद यदि शक्ति हो तो समय ले लेना चाहिये । कदाच समय लेना समब न हो तो घर में रहकर श्रावक की पडिमाओं का अभ्यास करने में तो अवश्य लगना ही चाहिये । आनन्द आदि श्रावकों ने ऐसे ही किया है ।

चौदहवाँ पुञ्ज

(१) प्रश्न—पडिमा का क्या अर्थ है ?

उत्तर—विशेष अभिग्रह को पडिमा (प्रतिमा) कहते हैं । साधुओं की उपासना (सवा) करने वाला श्रावक उपासक कहलाता है । जन शास्त्र में उपासको के करने योग्य ये ग्यारह पडिमाएँ कही हैं । १ दान प्रतिमा, २ व्रत प्रतिमा, ३ सामायिक प्रतिमा ४ पोषण प्रतिमा, ५ कायोत्सर्ग प्रतिमा, ६ श्रद्धाचय प्रतिमा, ७ सचित्त प्रतिमा, ८ आरम्भ प्रतिमा, ९ प्रेष्य प्रतिमा, १० उद्दिष्टभक्त प्रतिमा ११ श्रमण भूत प्रतिमा ।

(१) दान-प्रतिमा—इसमें श्रावक एक मास तक निरतिचार (शङ्काकाङ्क्षादि दोष रहित) सम्यक्त्व का पालन करता है अर्थात् क्रियावादी, अक्रियावादी एवं नास्तिक आदि वान्णियों के मतों को भली प्रकार जानकर भी सुदृढ रहता है । किसी भी परिस्थिति क्यों न हो, वह दब-गुरु घम के सिवा किसी को बन्दना नमस्कार नहीं करता सगे-सम्बन्धियों को जुझार, सलाम, जपरामजी की करना भी उसके लिए निषिद्ध है, क्योंकि ससार में रहता हुआ भी उस समय यह ससारिक व्यवहारों से अलग होना है ।

(२) व्रत प्रतिमा—यह दो मास की होती है । पहली प्रतिमा के सभी नियम पालते हुए इसमें सभी प्रकार के घम की रुचि विशेष रखी जाती है । ग्रहण किए हुए अणुव्रता गुणव्रतों एवं शिष्याव्रतों का निरतिचार पालन करना होता है अर्थात् चारित्रशुद्धि की तरफ विशेष मुक कर कमक्षय करने का प्रयत्न किया जाता है ।

(३) सामायिक प्रतिमा—यह तीन महीनों की है । पिछले सारे नियमों को पालता हुआ श्रावक नियमित रूप से प्रातः मध्याह्न एवं संध्या तीनों समय शूद्ध सामायिक तथा देशावकाशिक व्रत (नवकारसी पोरमो) आदि का अभ्यास करता है ।

(४) पौष्य प्रतिमा—पूव नियमों का यथाविविध पालते हुए श्रावक को इस प्रतिमा में चार मास तक अष्टमो चतुदशी, अमावस्या एवं पूर्णिमा के दिन अर्थात् महीने में छ दिन चौं सहित प्रतिपण (अठपहरिये-सोलहपहरिये) पौष्य

(५) कापोत्सव प्रतिमा—पिछले नियमों के अतिरिक्त इस प्रतिमा में श्रावक रात के समय कापोत्सव करता है, स्नान, रात्रि भोजन एवं घाती की लाग लगान का त्याग करता है। दिन में पूण ब्रह्मचारी रहता है और रात को अब्रह्मचर्य की मर्यादा करता है। इस प्रतिमा की उत्कृष्ट अवधि पाच मास की है। (अममथतावश कदाच कोई इमे बीच में छोड़ दे तो उसकी अपेक्षा से इसकी स्थिति एक-दो तीन दिन आदि की भी कही गई है)।

(६) ब्रह्मवय प्रतिमा—पूव नियमों के अतिरिक्त इस प्रतिमा में श्रावक पूण रूप से ब्रह्मचर्य पालता है। इसकी अवधि उत्कृष्ट छ मास की है।

(७) सचित्त प्रतिमा—इस प्रतिमा में उत्कृष्ट सात मास तक श्रावक सचित्त आहार का सबथा त्याग करता है। दूसरे सारे नियम पूर्ववत् हैं।

(८) आरम्भ प्रतिमा—इस प्रतिमा में पूव नियमों के अतिरिक्त श्रावक उत्कृष्ट आठ मास तक आरम्भ समावर्तन करने का सबथा त्याग करता है। इस त्याग के बाद वह सचित्त पृथ्वी पानी अग्नि बीज आदि का संघटा भी नहीं कर सकता।

(९) प्रेष्ठ्य प्रतिमा—इस प्रतिमा वाला श्रावक आरम्भ समावर्तन करवा भी नहीं सकता अर्थात् कहकर दूसरे से अपने गिये रसोई, पानी, आदि भी नहीं बनवा सकता। दूसरे नियम पूर्ववत् हैं एवं इसका समय उत्कृष्ट नव मास है।

(१०) उद्दिष्टमक्त प्रतिमा—इस प्रतिमा वाला थायक साधुओं की तरह अपने लिए बनाया हुआ भोजन आदि भी नहीं ले सकता । वह उस्तरे से हजामत करता है अथवा शिखा (चोटी) रखता है । घर-सम्बन्धी प्रश्न पृच्छने पर वह दो भाषा बोलता है । जानकारी होता वह देता है—मैं जानता हूँ अन्यथा कह देता है—मैं नहीं जानता । हाँ नाँ व सिधा और कुछ नहीं कह सकता । इस प्रतिमा का समय अष्टमि दस मास है ।

(११) श्रमणभूत प्रतिमा—इस प्रतिमा वाला थायक गच्छि हो तो लौच करता है, अन्यथा हजामत करता है । लुब्धित या मुण्डित मन्तक होकर तीन करण तीन योग से सावद्यकाय का त्याग करता है एव साधुवत् वेप (मुट्टपत्ति, रजोहरण आदि) धारण करता है (रजोहरण को छण्डो खुली रखता है) । महाव्रत समिति एव गुप्तियों का निरतिचार पालन करता है । साधुओं की तरह वह गोचरी भी जाता है, किन्तु स्वजनों के ममत्व बन्धन होने के कारण केवल उन्ही के घरों में गोचरी करता है । वह एषणासमिति का पूरा ख्याल रखता हुआ (४२ दोष टाल कर) मिथा लेता है । (मिथाय घर में चले जान से पहले पक कर चूल्हे से उतरे हुए चावल तो लता है लबिन घर में जाने के बाद चूल्हे से उतरी हुई दाल नहीं ल सकता) ।

वेप पडिहेणादिक्रियाएँ एव भिक्षाविधि साधुओं के समान होने से ग्यारहवी प्रतिमा को श्रमणभूत कहा गया है । मिथाय गृहस्थ के घर में प्रवेश करते समय वह कहता है कि मैं

थावक हूँ। मुझे भिक्षा दो! इस प्रतिमा का समय उत्कृष्ट ११ मास का है। पिछली प्रतिमाओं के नियम तो इसमें लागू हैं ही।

ग्यारह प्रतिमाएँ क्रमशः की जाएँ तो उनके सम्पन्न होने में साढ़े पाँच वर्ष (६६ मास) लगते हैं। कइयों की मान्यता है कि पहली पडिमा में थावक को एकांतर-उपवास, दूसरी में बेले-बेले, तीसरी में तैले तैले यावत् ग्यारहवीं पडिमा में ग्यारह ग्यारह की तपस्या करनी चाहिए, अस्तु!

पडिमाओं का पालन करते करते अथवा रोग या वृद्धावस्था आदि के कारणों से जब मृत्यु निकट प्रतीत होने लगे तब थावक को संलेखना सधारा करके समाधिमरण प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्न २—संलेखना सधारा किसे कहते हैं ?

उत्तर—शरीर एवं क्रोधादि कषायों को क्षीण करने वाले विशेष तप को संलेखना कहते हैं।^१ वह यदि अन्तिममरण के समय की जाए तो उसे अपेक्षित मारणान्तिकी संलेखना कहा जाता है, तथा संलेखना करते करते यदि शरीर अधिक क्षीण प्रतीत होने लगे तब याव-जावन के लिये तीनो या चारों आहारों का त्याग कर देना सधारा—जनशन कहा जाता है।

प्रश्न ३—अन्तिम संलेखना सधारा कसे करना चाहिए ?

उत्तर—आत्मार्थ थावक को इस प्रकार से आराधना करनी चाहिए।^२

नोट १—वर्षापतिदि

२—श्रीमन्न्यासापकृत आराधना के आधार से

(१) सबप्रथम ग्रहण किये हुए सम्पन्नवृत्त शरद पूर्णिमा मकर-
परवर्षा ज्ञान या अज्ञान में जो कोई अनिष्टार-लौकिक भी हो तो
उनकी गुरु आदि के सामने सरल भाव से क्षमाचना करते हुए नित्य-
विचित्र लेखर पुद्ध होना चाहिए ।

(२) फिर ग्रहण किये हुए यतों का ऊच स्वर में दुरारा रक्षक
रग करना चाहिए ।

(३) यतों का आरोपण करने के बाद गव जीको से (सर विष्णु
हो उनका पुत्र नाम लेकर) नि-गम्य होकर समतसामना करना
चाहिए (समाण बिना मरने वाला विरायक माना गया है) ।

(४) समतसामना करने के बाद प्राणातिपात आदि अत्राह
पापों का यथाशक्ति त्याग करना चाहिए ।

(५) पाप-परित्याग के बाद अरिहन्त, सिद्ध या साधु एवं धर्म
को गरण लेनी चाहिए ।

(६) फिर जन्म-जन्मान्तर में किये हुये मिथ्यात्वादि दुष्कृत्यों का
निन्ता करनी चाहिये ।

(७) दुष्कृतनिन्दा के बाद अपने द्वारा किये हुये स्वाध्याय ध्यान
ज्ञान-ज्ञान चारित्र्य की आराधना एवं दान गील तप भोगों का
धनुशीलन आदि सुकृत कार्यों का अनुमोदन करना चाहिए ।

(८) सुकृत अनुमोदन के पश्चात् सद्भाव में रक्षा करना चाहिए ।
अन्तिम-समय की घोर वेदना में भगवान् महाशैव धर्मनितनकुण्ड
स्वल्प गजसुकुमाल आदि महात्माओं की हृदयैश्वर्यता के स्मरण
करते हुए परिणामों को सुदृढ़ रक्षना चाहिए ।

(६) सदभावना माने भाने मरण निकट प्रतीत होने लगे तब अरिहन्त सिद्ध एव धर्माचार्य को नमोत्पुण्य देकर (नमस्कार करके) त्रिविहार अथवा अवसर हो तो चौविहार सधारा (अन्तर्दान) कर लेना चाहिए ।

(१०) अन्तर्दान करने के बाद श्रौतमस्कार महामन्त्र का जाप करते करते इन दसों प्रकार की आराधना से सम्पन्न होकर समाधि मरण को प्राप्त होना चाहिए किन्तु जीव के समय में इहलोक परलोक आदि को आशंसारूप पाँचों अतिचारा का सेवन न हो जाय इसका पूरा पूरा रक्षाल रखना चाहिए ।

प्रश्न ४—पाँच अतिचार कौन कौन से हैं ?

उत्तर—अतिचारों के नाम इस प्रकार हैं—(१) इहलोकागता-प्रयोग (२) परलोकाशंसाप्रयोग (३) जीविताशंसाप्रयोग (४) मरणा-शंसाप्रयोग, (५) कामभोगाशंसाप्रयोग ।

(१) इहलोकागताप्रयोग—इहलोक अर्थात् मनुष्यलोक सम्बन्धी इच्छा करना । जमे सधारे के फलस्वरूप जन्मान्तर में मैं राजा मन्त्री या ठेठ बन जाऊँ ।

(२) परलोकाशंसा प्रयोग—सधारे के फलस्वरूप जन्मान्तर में इन्द्र अथवा महाद्विक देवता बन जाऊँ—ऐसे परलोक विषयक अभि-लषा करना ।

नोट—उपासकदशा ख० १ धम सग्रह अधिकार २, श्लोक ६६ तथा हरिमन्त्रीय प्रावश्यक ख० ६, पृष्ठ ८३८ ।

(३) जीविताशंसाप्रयोग—बहुपरिवार एवं लोक-प्रशंसा (सयारे की महिमा) आदि कारणों से अधिक जीवित रहने की इच्छा करना ।

(४) मरणान्ताप्रयोग—सयारे की प्रशंसा न दस्य कर अथवा सुधा-तृपा से पीड़ित होकर जल्दी मरजाऊ तो ठीक—तेसे विचार करना ।

(५) कामभोगान्ताप्रयोग—मनुष्य एवं देवता सम्बन्धी काम अर्थात् वाग्द, रूप एवं भोग अर्थात् गन्ध रस स्पर्श की इच्छा करना ।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि सयारेवाच्य धावक को पौद्गलिक सुखों की एवं जीवन मरण की इच्छा करनी नहीं कल्पती क्योंकि शास्त्रों के अनुसार ये इच्छाएँ सयारे को दूषित करने वाली हैं ।

प्रश्न ५—आराधक-धावकों की गति क्या है ?

उत्तर—आराधक धावक नरक त्रियम्ब-मनुष्य भवनपति वाच्य मन्तर एवं ज्योतिषी देवों में उत्पन्न नहीं होते, केवल वमानिष्ठ देवताओं में जाते हैं । वे अधन्य प्रथम स्वर्ग और उत्कृष्ट त्रियम्ब धावक आठवें स्वर्ग तक एवं मनुष्य धावक बारहवें स्वर्ग तक जा सकते हैं* । लेकिन विराधक होने पर नन्दमणिकार व अमीचिकुमार वत आय गतियों में मटक सकते हैं । अमीचिकुमार विराधक हाक भवनपति देव बना था एवं नन्दमणिकार मेंक बना था ।

प्रश्न ६—क्या धावक को अवधि ज्ञान होता है ?

उत्तर—अवधिनानावरणीय-रूप का क्षयोप-रहित पर-द-वि

ज्ञान हो सकता है। आनन्द एव महाशनक—इन दोनों श्रावकों को सधारे में अवधि ज्ञान उत्पन्न हुआ था। उनकी जोवन घटनाएँ इस प्रकार हैं।

आनन्द श्रावक—वाणिज्यग्राम नगर में आनन्दगाथापति रहता था। वह राजमान्य एव बड़ा भारी जमींदार था। उसके पास बारह करोड़ सोनमें, चार गोकुल, पाँच सौ हलों से जोती जाये इतनी जमीन हजार गाँडे एव चार बड़े जहाज थे। गाँडे व जहाज स्थल तथा जल-माग में व्यापाराय चलते थे।

सगवान महावीर पधारे, राजा-प्रजा दशनाथ गए। प्रभु की देशना मुनकर आनन्द गाथापति ने अपनी धर्मपत्नी शिष्यान्दा सहित श्रावक के बारह घन ग्रहण किए। निरतिचार पालन करते चौन्ह वष व्यतीत हुए। तब उसने ज्येष्ठपुत्र को घर का भार सौंप कर श्रावक की ग्यारह पडिमाएँ धारण कीं। शरीर अत्यधिक दृग्ग होने से सलेखना सधारा करके घम ध्यान में लीन हो गया। उस समय उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। वह तीन दिशाओं में पाँच पाँच सौ योजन तक लवण समुद्र, उत्तर दिशा में चुल्लहिमवान् पवत तक ऊपर प्रथम स्वर्ग एव नीचे प्रथम नरक के लोलुयच्युत नरकावास तक (जहाँ चौरासी हजार वष की आयु है) जानने-देखने लगा।

उसी समय प्रभु महावीर का पदापण हुआ। गौतम बेटे का पारणा लेन नगर में गाधरी गए। लौटते समय आनन्द के सधारे की बात सुनी एवं उसक यहाँ पधारे। आनन्द अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

खठ न सकन के कारण नज्दीक पधारन की प्राथना की। पधारन पर सहृदय वन्दना करके चरणस्पर्श किया एवं अवधिज्ञान उप न होने की चर्चा की। चौंकर श्री गौतम न कहा—धावक को इतना बड़ा अवधिज्ञान नहीं हा सकता अत तुम्हे अमत्य भाषण का प्रायश्चित्त लेना चाहिए।

आनन्द बोला—गुरुदेव। अमत्य भाषण आपने ही किया है, अत आप हा भगवान् से प्रायश्चित्त लीजिए। शक्ति होकर गौतम ने प्रमुचरणों मे आकर सारा हाल कहा। भगवान् न परमाया आनन्द सच्चा है तुमने मूल को है, अन अभी वापिस जाकर उसस क्षमा मागो एवं फिर प्रायश्चित्त लो। सरलहृदय एवं निराभिमानी गौतम ने तत्काल आनन्द से क्षमा मागो और फिर प्रायश्चित्त लकर शुद्ध हुए।

आनन्द ने बीस वष तक धावक क्षन का पालन किया। अन्त मे एक मास की सलेखना न समाधिमरण को प्राप्त होकर स्वर्ग के अरुण विमान मे चार पत्य की आयुवाग देवता बना। वहाँ स च्यव कर विदेह क्षेत्र मे मोक्ष लीजिए।

महाशतक—राजगृह नगर में महाशतक सैठ का चौबीस करोड सोनयों व आठ गोकुलो का स्वामी का आदि १३ स्त्रियाँ थीं। रेवती के पास उग्र गोकुल एवं आठ करोड सोनये अलग थे। के पास पीहर से प्राप्त एक एक करोड

भगवान् महाशतक का आगमन हुआ

ने श्रावण के व्रत लिए व यथाविधि पालने लगा । इधर रेवती मांस-मन्त्रि का सेवन करती थी अतः उसकी कामपिपासा अत्यधिक बढ़ गई । उसने काममुत्साही का हिस्सा लेने वाली अपनी चारह सपत्नियों की विधे एवं दाह्य के प्रयोग से मार डाला । फिर सूर्य मांस मन्त्रि सा-धीवर महाशतक के साथ यथेष्ट काम भोग भोगने लगी ।

एक बार राजगृह में अमारी (हिंसावन्दी) की घोषणा हुई । बाजार में मांस न मिलने से रेवती अपने पति के गोकुलों में से दो बछड़ों का मांस मगाकर प्रतिदिन खाती थी । इधर महाशतक आनन्द की तरह पुत्र को घर संभला कर पट्टिमाझी की आराधना करने लगा । गरीब दीन होने पर उसने आमरणान्तिक-सल्लेखना (सधारा) स्वीकार की एवं उसे अवधिमान हुआ ।

एक दिन कामोन्मत्त होकर रेवती वीषघण्टा में आई और महाशतक से भोग की प्रायणा करने लगी, श्रावण दाह्य रहा । किन्तु दो तीन बार आग्रह करने पर वह क्रुद्ध होकर शान के बर से बहने लगा— पापिनी ! क्यों बरबात कर रही है, आज से सात रात के भीतर तू अलस (विसुचिका) रोग से पीडित होकर मर जायगी एवं प्रथम नरक के लोलुपच्युत नरकावास में उत्पन्न होकर चौरासी हजार वर्ष तक नरक की घोर वेदना सहन करेगी । मयमीत रेवती तत्काल लौट गई एवं महाशतक के कथनानुसार मरकर प्रथम नरक में उत्पन्न हुई ।

इधर उसी समय भगवान पधारे एवं उन्होंने गौतम के आगे महाशतक की चर्चा करते हुए कहा—गौतम ! तुम जाकर सल्लेखना में बैठे

हुए उस श्रावक से बहो कि तुमन जो रेवती को कट्टु सत्य कहा है, वह ठीक नहीं किया, अतः उसका प्रायश्चित्त लेकर गृद्ध हो जाओ ! गौतम उसके घर गए एवं वह दुष्ट का प्रायश्चित्त स्वर निमल बना । अन मे एक मास की संलेखना सम्पन्न करके वह अशगावतसश्च विमान मे देव हुआ । यावत् आनन्दवत् महाविदेह क्षेत्र मे सिद्ध, बुद्ध य मुक्त होगा अस्तु !

पन्द्रहवाँ पुञ्ज

(१) प्रश्न—श्रावक की दिनचर्या कसी होनी चाहिए ?

उत्तर—श्रावक को प्रातः देरी से न उठना चाहिए । उठने के साथ ही उसके मुँह से नमस्कार महामंत्र की ध्वनि निकलनी चाहिए । उसको सामायिक करके प्रातः कालीन प्रतिक्रमण करना चाहिए एवं चौन्ह नियम धारण करने चाहिए । उमे नवकारसी आने से पहले खाना पीना न करना चाहिए (हो सके तो पोरसी करना चाहिए) । साधु-साध्वियों का योग हो तो सर्वप्रथम उनके दान करने चाहिए एवं फिर सेवा व्याख्यानादि का लाभ लेना चाहिए (साधु-सेवा से दम बोलों की प्राप्ति होती है) अथवा स्वयं सामायिक करके धार्मिक पुस्तकों का पठन पाठन करना चाहिए एवं ध्यानस्थ होकर तीन मनोरथों का अनुशीलन करना चाहिए ।

उम जुआ, मात, मदिरा, वेश्यागमन, शिकार, चोरी, परस्त्री गमन इन सातों कुव्यसनों तथा अमीक का समूचा त्याग करना

चाहिए । हरी सब्जी, रात्रिमात्रा एवं अग्रहाचय का पूर्ण त्याग न हो सके तो पाँच तिथियों के दिन तो इनको अवश्य छोड़ना ही चाहिए । अष्टमी, चतुदशी एवं पनखी के दिन उपवास-पौषष करन चाहिए ।

व्यापार मे अप्रमाणिकता न करनी चाहिए । अन्याय का पैसा घर मे न आने देना चाहिए । मुनीम-गुमास्तो, नौकरो एव पगुओ से अधिक थम न लेना चाहिए । वाणी का विवेक रखना चाहिए । बीभत्स शब्द न बोलने चाहिए । गृहकलह न होने देना चाहिए । सभी के साथ ऐसा मधुर-व्यवहार रखना चाहिए कि सपर्क में आने वाले पर जन श्रायकत्व की अमिट छाप लग ही जाये ।

सध्यासमय पुन प्रतिक्रमण करके कण्ठस्थ बोल-धोकडों का स्वाध्याय करना चाहिए । आत्मिक चिन्तन करते हुए अपन दैनिक कृत्या का स्मरण करना चाहिए जैसे मैने आज व्यर्थ हिंसा कितनी की एव दया कितनी पाली ? निक्म्मी गप्पें कितनी मारी व सत्य कितना बोला ? व्यापार मे प्रमाणिकता कितनी रखी तथा बेईमानी कितनी की ? मन निर्विकार दशा मे कितनी देर रहा तथा विकार कितनी बार आये ? धार्मिक क्रियाएँ (सामायिक प्रतिक्रमणाणि) आत्मकर्याणार्थ कीं या धार्मिकता का ढोंग दिखाने के लिए ? क्रोध आने पर क्षमा आदि का आश्रय लिया या नही ? कल की अपेक्षा आज कुछ त्याग वराम्य की वृद्धि हुई या हानि ? अपनी प्रशंसा व दूसरो की निन्दा तो नहा की ?

इस प्रकार याद करके जान अनजान में किए गये पापों का परचात्पाप करते हुए दूसर जिन के लिए विशेष सावधान रहन का दृढ़

सकल्प करना चाहिए । फिर सोते समय नवकार त्रिगुणो ब्रह्मर
घडवीसत्यव करते हुए सधारा कर लेना चाहिए । (यह सागरी
सधारा कहलाता है) ।

(२) प्रश्न—सागरी-सधारा कमे किया जाता है ?

उत्तर—उक्त सधारा करने वाला ध्यावक कहता है कि निद्रा के
समय कदाच चोर, सिंह, सप, अग्नि जल आदि का उपद्रव हो जाये
एव उससे अचानक मरजाउँ तो मेरे शरीर सम्बन्धी मोन, मपन्व
चारों आहार तथा अठारह पाप-स्थानकों का त्याग है एव सुप्त-दान्ति
पूर्वक उठ जाउँ तो पूर्ववत् खुला हू । सागरी-सधारा करते समय कई
ध्यावक निम्नलिखित दोहा भी बोलते है —

आहार शरीर अने उपधि, पञ्चकलू पाप अठार ।

मरण होय तो वोसिरे जीवू तो आगार ॥

प्रश्न ३—व्या प्रतिश्रमण करना ध्यावक के लिए जरूरी है ?

उत्तर—प्रतिक्रमण आवश्यक का चौथा अध्ययन है एव अनुयोग
द्वार सूत्र मे कहा है कि^१ साध ध्यावक द्वारा दिन रात की सधिय के
समय अवश्य करने योग्य है, अतएव इसका नाम आवश्यक है । तथा
भाव आवश्यक का स्वरूप बताते हुए कहा है कि^२ साधु साध्वो

१—समणेण सावणं य अवसस कायध्व हवइ अग्हा ।

अन्तो अहोनिस्सस्स य तग्हा आवस्सय नाम ॥

२—न ण इमं समणो वा समणी वा, सावकेण साविस्सं न

तच्चित्ते तम्मणे, तल्लेसे, तन्मभवत्तिए तल्लेसे उभयवत्तं ए-

दुवत्तं तदपियकरणे, त मावणात्तं उभयवत्तं एव मक्

अकरेमाणे उभयो काले आवस्सं एव से

मावावस्सय ।



श्रावक श्राविका तद्विषय यावत् एक मना होकर दोनों वस्तु आवश्यक किया करते हैं। इन दोनों गार्हपत्य उद्धरण के अनुसार श्रावकों के लिये दोनों वस्तु प्रतिदिन आवश्यक करना जरूरी होता है। आज कल आवश्यक को आम तौर पर प्रतिक्रमण ही कहा जाता है।

कथ्यों का कथन है कि प्रतिक्रमण का अर्थ पापों से पीछे हटना है अर्थात् व्रतों में लगे हुए अतिचार दोषों की आलोचना करके शुद्ध होना है अतः घृतघारी-श्रावकों के लिये यह आवश्यक हो सकता है किंतु सब के लिए नहीं।

समाधान इस प्रकार है—पाप केवल व्रतों के भङ्ग होने से ही नहीं लगता मिथ्यात्व, कर्पाय एव योगों से भी लगता है। व्रतवारी न होने पर भी मिथ्यात्वादि का पाप तो लगता ही रहता है। प्रतिक्रमण में सबकी आलोचना है, अतः प्रतिक्रमण घृती अत्रती सभी श्रावकों को अवश्य करना चाहिए।

आगम में पाँच प्रकार का प्रतिक्रमण कहा है—१ आश्रयद्वारा प्रतिक्रमण २ मिथ्यात्वप्रतिक्रमण, ३ कर्पाय प्रतिक्रमण ४ योगप्रतिक्रमण, ५ भावप्रतिक्रमण*।

(१) प्राणानिपात, मृपावाद, अदत्तापान, मथुन और परिग्रह इन पाँचों आश्रयों से निवृत्त होना पुनः इनका सेवन न करना आश्रयद्वारा प्रतिक्रमण है।

(२) उपयोग, अनुपयोग या सहसाकारवश आत्मा के (शका

काष्ठादिह्य) मिथ्यास्व-परिणाम म प्राप्त हो जान पर उमन निवृत्त होना मिथ्यास्वप्रतिक्रमण है ।

(३) क्रोध-मान माया लोभरूप कषाय परिणाम से आत्मा को निवृत्त करना कषायप्रतिक्रमण है ।

(४) मन बचन-बाया क अगुमश्यापार प्राप्त होने पर उनम ध्याया को पूषक करना योगप्रतिक्रमण है ।

(५) आप्तद्वार मिथ्यास्व, कषाय और पाप में तान करण तान योग से प्रवृत्त न होना भाषप्रतिक्रमण है ।

मिथ्यास्व, अग्रन, प्रमान, कषाय और अगुमयोग क ने से भी प्रतिक्रमण पांच प्रकार का बना गया है । वही अग्रन प्रमाद का समावग आश्रव-प्रतिक्रमण में हो जाता है—

स्या ६१७३८ मे प्रतिक्रमण क छ मे से होते हैं—१ उच्चार प्रतिक्रमण, २ प्रथवणप्रतिक्रमण, ३ इत्वरप्रतिक्रमण, ४ यावत्कषिक प्रतिक्रमण, ५ यत्किचिमिथ्याप्रतिक्रमण ६ स्वन्नान्तिव प्रतिक्रमण ।

(१ २) उपयोगपूषक मल मूत्र का त्याग करके ह्याप्रतिक्रमण करना उच्चारप्रतिक्रमण एक प्रथवणप्रतिक्रमण है ।

(३) निन रात्रि सम्बन्धा स्वल्पकालीन प्रतिक्रमण करना इत्वर प्रतिक्रमण है ।

(४) मन्नाशन आदि के रूप म यावज्जीवन के लिए पाप से निवृत्त करना यावत्कषिकप्रतिक्रमण है ।

(५) अज्ञावजानीवग गलती होने पर उसी समय पश्चात्तारपूर्वक मिच्छामि दुःख्ड बोलना यत्किचिमिथ्याप्रतिक्रमण है ।

(६) सोबर उठने के बाद किया जाने वाला अथवा विकार वासना रूप कुस्वप्न देखने पर किया जाने वाला प्रतिक्रमण स्वप्नान्तिकप्रतिक्रमण है ।

काल के भेद से प्रतिक्रमण तीन प्रकार का भी होता है—भूतकाल में लगे हुए दोषों की आलोचना करना अतीतप्रतिक्रमण है । वर्तमानकाल में लगने वाले दोषों से सवर द्वारा बचना वर्तमानप्रतिक्रमण है और भावों दोषों को पञ्चवस्त्राण द्वारा रोकना अनागतप्रतिक्रमण है ।

विशेषकाल की अपेक्षा से भी प्रतिक्रमण के पाँच भेद मान गए हैं १ द्युसिक, २ रात्रिक ३ पादिक ४ चातुर्मासिक, ५ सांवत्सरिक इनमें क्रमशः दिन, रात पक्ष, चानुमास एव षण् मर के पापों की आलोचना की जाती है ।

प्रश्न ४—साधुओं के पास दशनार्थ जाते समय क्या विधि की जाती है ?

उत्तर—शास्त्रों में पाँच अभिगम (साधुओं के पास जाते समय पाले जाने वाले नियम) बड़े हैं । यथा^१

- १ अचित्तवस्तु (पुष्प-ताम्बूल आदि) पास न रखना ।
- २ अचित्तद्रव्य (वस्त्रादि) मर्षादित करना ।
- ३ एकपट थाले दुपट्टे का उत्तरासङ्ग करना अर्थात् बन्धना करते समय खुले मुँह न बोला जाय ऐसा उपाय करना ।
- ४ मुनिराज के दृष्टिगोचर होते ही हाथ जोड़ना ।
- ५ मन को एकत्र करना ।

१—भगवती २।५ तथा औपचारिक समवसरण अधिपार

इन पाँचों अंगों का अनुसरण करते हुए धर्म का
 का पाठ बोल कर विधिपूर्वक वन्दना करनी चाहिए।
 करके समयमात्रा की सुवसाता पूछनी चाहिए।
 कि वन्दना करने से नीच गोन का दाय होता है एवं
 उपासन होता है तथा अप्रतिहत सोभाग्य मिलता है।

प्रश्न ५—साधुओं की पयुपानता (सेवा मस्ति) करने से
 कौन से लाभ मिलते हैं ?

उत्तर—निम्नलिखित धर्मशास्त्रों द्वारा दत्त बोल्य की प्राप्ति होती है—

- (१) साधु धर्मकथा व शास्त्रिक स्वाध्याय करते रहते हैं व
 सेवा करने वाले को सबप्रथम शास्त्र धर्म का लाभ मिलता है।
- (२) शास्त्रधर्म करने से श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है।
- (३) श्रुतज्ञान से विज्ञान (हेय उपादय आदि का विषय जाना)
 होता है।
- (४) विज्ञान होने से हेय (त्याग्य) पण्य को त्यागने की
 भावना होती है एवं प्रत्याख्यान का लाभ मिलता है।
- (५) प्रत्याख्यान करने से समय सवर होता है।
- (६) समय से अनाश्रय होता है यानि नवीन कर्मों का आगमन
 नहीं हाता।

(७) अनाश्रय होने के बाद अनशन आदि कर्मों का
 की आर प्रवृत्ति होती है।

(८) तप से व्यद्वान होता है अर्थात् पूर्वकृत कर्मों का नाश होना है अथवा पूर्वकृतकर्मरूप कचरे को शुद्धि हाती है ।

(९) कमशुद्धि होने के बाद आत्मा अक्रिय अयोगी बन जाती है ।

(१०) योगनिरोध होने पर जीव का निर्वाण मोक्षगमन होता है—यही आत्मा का अन्तिम प्रयोजन है ।

प्रश्न ६—श्रावक के तीन मनोरथ समझाइए ?

उत्तर—पहले मनोरथ में श्रावक यह भावना भावे कि वह शुभ दिन कब आएगा, जब मैं अल्प या अधिक परिग्रह का त्याग करूँगा ।

दूसरे मनोरथ में श्रावक यह चिन्तन करे कि वह शुभ समय कब प्राप्त होगा, जब मैं गृहस्थावास को छोड़ कर समय ग्रहण करूँगा ।

तीसरे मनोरथ में श्रावक यह विचार करे कि वह मंगलवेला कब आएगी जब मैं अन्तिम समय की सलेखना धार कर आहार पानी का त्याग कर एवं पादोपगमन मरण अंगीकार कर जीवन मरण को इच्छा न करता हुआ विचरूँगा ।

मन वृचन काया से—इन तीनों मनोरथों का अनुशीलन करता हुआ श्रावक महानिजरा एवं महापयवसान (प्रशस्त अन्त) वाला होता है ।

प्रश्न ७—श्रावक क धार विग्राम कौन कौन से हैं ?

उत्तर—जमे भारवाहक मनुष्य के धार विग्राम होते हैं—

(१) भार को एक कंधे से दूसरे कंधे पर लाना (२) टट्टी वेशाब धरते समय भार को नीचे उतारना, (३) रास्ते में रात पडन पर

देवालय आदि में विश्राम करना (४) जहाँ पहुँचना है - वहाँ जाए व
बिल्कुल मुक्त होना । उसी प्रकार सप्ताहिक मारन एवं दृष्ट्यावक
के भी चार विश्राम माने गए हैं—

१—अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत एवं अन्याय त्याग-पञ्चमपन्न
करना—यह पहला विश्राम है ।

२—सामायिक तथा देगावकाशिक क्रम का पालन करना तथा
ग्रहण किए हुए व्रतों में रखी हुई मर्यादा का प्रतिदिन सकोच करना
दूसरा विश्राम है ।

३—अष्टमी चतुदशी, अमावस्या एवं पूर्णिमा व जिन प्रसिद्ध
पोषक करना तीसरा विश्राम है ।

४—अंतिम-संलम्बना करके आहार-पानी त्याग कर, निरपेक्ष
होकर जीवन मरण की इच्छा न करते हुए गान्तमाव में विचरना
चौथा विश्राम है ।

प्रश्न ८—श्रावक को भगवान ने क्या दर्जा दिया है ?

उत्तर—चार तीर्थों में श्रावक-श्राविका के दो तीर्थ गिने हैं)
साधुओं के घम पालन में उन्हें परम सहायक माता है । सहायक ही
नहीं उनको माता पिता के समान भी कह दिया है । वे हर वक्त साधु
साध्वियों का हित चिन्तन करते रहते हैं । स्थाना होने में उन्हें
एकान्त में मीठी वाणी से समझा कर हठान कर लेते हैं।
तीसरे आश्रमी को पता तक नहीं पता है।

प्रश्न ६—क्या सभी श्रावक ऐसे हो सकते हैं ?

उत्तर—बिरले ही हो सकते हैं । भगवान् ने चार प्रकार के श्रावक कहे हैं । १ माता पिता समान, २ भाई समान, ३ मित्र समान, ४ सपत्नी समान ।

(१) बिना अपवाद के साधुओं के प्रति एकान्त रूप से वत्सलभाव रखने वाले श्रावक माता पिता के समान हैं ।

(२) तत्त्वविचारणा आदि में कठोर वचनों द्वारा कमी साधुओं से अप्रीति होने पर भी नीच प्रयोजनों में अतिशय-वत्सलता रखने वाले श्रावक भाई के समान हैं ।

(३) कारण बश साधुओं से अप्रीति होने पर भी आपत्तिकाल में उसकी उपेक्षा करने वाले श्रावक मित्र के समान हैं ।

(४) साधुओं में सदा दोष देखने वाले तथा उनका सदैव अपकार करने वाले श्रावक सपत्नी सौत के समान हैं—(यि केवल नाम के श्रावक हैं) ।

दूसरी अपेक्षा से भी श्रावक चार प्रकार के कहे हैं—१ आर्द्रा समान, २ पताहा समान, ३ स्वर्ण समान, ४ सूर्यपुष्पक-समान ।

(१) जैसे—दण्ड समीपस्थ पदार्थों का प्रतिबिम्ब यथाथ रूप से ग्रहण करता है उसी प्रकार जो साधुओं से उपदिष्ट उत्तम अपवाद आदि आगम सम्बन्धी भावों को यथार्थ रूप से ग्रहण करते हैं, वे श्रावक आर्द्रा (दण्ड) के तुल्य हैं ।

२ जैसे—अस्थिर पताना जिघर की हवा होती है उसी दिना मे पहराने लगती है, उसी प्रकार जिन का अस्थिर ज्ञान विचित्र देना रूप वायु से प्रभावित होकर बल्लता रहता है अर्थात् जिनकी काँते सुनते हैं उसी ओर झुक कर हाँ-हाँ करने लगते हैं—ऐसे धावक पताका (ध्वजा) के समान है ।

३ जो गीताय मुनि के समझाने पर भी अपना दुराग्रह नहीं छोडते वे अनमनशील-ज्ञान वाले धावक स्थाणु के समान हैं (ब्रमा या सुखा लकडा स्थाणु कहलाता है) ।

४ जो समझाने पर अपना दुराग्रह तो नहीं छोडते वलिक समझान वाले को दुर्वचन रूप काँते से बीध डालते हैं, ये धावक खर-कण्टक (बबूलादि के तीखे काँते के समान है) प्रथम प्रकार के धावक श्रेष्ठ एवं नेप तीव्र प्रकार के निकृष्ट हैं ।



श्री जिनाय नम

श्राविका प्रेमो वाई के सथारा के उपलक्ष में रचयिता—मुनि श्री धनराज जी

(राग —माढ)

भारी लाम कमापोजी, थे सथारो धार ॥ भारी ॥

धन थारो अबतार ॥ भारी ॥ ध्रुवप ॥

दाव-धाव अरु घाई पेवी ही थरि मन नाय ।

सीधा-सादा जीवन थारो, भायो म्हारे दाय ॥ भारी ॥ १ ॥

जन जगत मे जनम्या परण्या घास्था व्रत सुलकार

घोर तपस्या कर कर काड्यो, मानव तन रो सार ॥ भारी ॥ २ ॥

बुढापा मे क्रमश थारी, तनडो होगयो क्षीण ।

तुलसी गणिवर भूमर मुनि ने, भेज्या मरजी कीन्ह ॥ भारी ॥ ३ ॥

बेग थारा सारा आया, ही मन सबके चाह ।

सथारो अब किणविघ आवे, भाजी ने सुखनाय ॥ भारी ॥ ४ ॥

भाव मनोगत जाणी मानो, थे माग्यो सथार ।

मोभी बेट मट करवायो अवसर जाण उदार ॥ भारी ॥ ५ ॥

जीवन पर थारे कलश चड्यो है अब नर्हा फिकर लिंगार ।

मन दडताई राखो पूरी होसी बेडा पार ॥ ६ ॥

मोहमाया मन मे मतल्यावो, ध्यावो प्रभु रो ध्यान ।

धन मुनि प्रभु रो ध्यान घस्थास्यू, निश्चित है निवाण ॥भा० ॥७॥

रचयिता :- मुनि श्री धनराजजी
(राग म्हारी रस-सेलडो)

धन्य, प्रेमी बाई । अछी उजवाली आतम आपरी ध्रुव ॥
 पोहरिया भावक सातरिया, जात पुगलिया जाणो ।
 मूमर आदि पाच पुत्रतिम, पुत्री एक मुलतानी जी ॥ धन्य ॥ १ ॥
 मोमी सुत ने श्री कालू रे, चरणा भेंट चढ़ायो ।
 पाछ्छी पीत अधिकाधिक त्याग वराग बघायोजी ॥ धन्य ॥ २ ॥
 सवर सामाइन पोपादिक, कर कर जन्म सुधाख्यो ।
 चार बार क्रियो मास खमणबलि एवान्तर* तप धारयोजी ॥ धन्य ॥
 क्रमश काया क्षीण पडो तब रुक गयो फिरणो धिरणो ।
 देवण साम्क घरमरो आयो, मूमर मुनि सुखकरणोजी ॥ धन्य ॥ ४ ॥
 फागण सुद सातमने, मुख सथारो मांगण लागी ।
 तीन दिनारो हूँ* अब मुझ न, यो अनशन बडमागीजी* ॥ ध० ॥ १ ॥
 तीव्र भाव लख सध्या वेण सथारो पचवायो ।
 मूमर मुनि जा माताजो रो, जीवन सफठ वणायोजी ॥ ध० ॥ ६ ॥
 सत सत्यां दिया दर्शन बलि बलि, धर्मध्यान मन्मलायो ।
 अमरोबाई नवमी रे दिन चौबिहार करवायोजी* ॥ धन्य ॥ ७ ॥
 सामे साडे सात वजे अच सीक गयो सथारो ।
 फतै कर गई प्रेमी बाई धन उणरो अवतारोजी ॥ धन्य ॥ ८ ॥
 दो हजार तेवीस फागणरी सुद दशमी मनभाई ।
 हूणरगड प्रेमी बाई रो धनमुनि महिमा गाईची ॥ धन्य ॥ ९ ॥

१—बारह वष तक ।

२—चान हुआ या अनुमान से कहा, कुछ खबर नही लेकिन बात सही निकली ।

३—लगभग सध्या ६॥ वजे ।

४—दिन क पौन वजे अन्दाज ।

५—उनचास घण्टे बाद

—लेखक की अन्य प्रकाशित रचनाएँ—

हिन्दी	मूल्य	प्राप्ति स्थान
सुब्बा मन	३७ पैसे	श्री जन एवे० ले० समा, मालेरकोटछा (पंजाब)
प्रश्न प्रकाश	६० पैसे	श्री जन एवे० ले० महासमा ३, चौधुगोश चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता—१
धमकने धाँ	३० पैसे	श्री जन एवे० ले० समा
ज्ञान प्रकाश	१ ०० ६०	भीनासर (राजस्थान)
एक भादर्श-आत्मा	२८ पैसे	श्री मदनचंद सुपतराय बोर्ड
सोडह सतिषों	३ ०० ६०	दुकान नं० ४०, धानमण्डी
मनोनिग्रह के दो मार्ग	१ ५० ६०	श्रीगमानगर (राजस्थान)
लोक प्रकाश	१ २५ ६०	श्री जैन एवे० ले० समा
धारिन प्रकाश	२ ५० ६०	बालोतरा (राजस्थान)
भयनों को भेंट	६० पैसे	
जन जीवन	६२ पैसे	श्री जैन एवे० ले० समा गगासहर बीकानेर (राजस्थान)
ज्ञान के पीठ	१ १० ६०	शा० जसराज जवरीलाल जन त्रिपोल्या बाजार, जोधपुर
शौदह नियम ससृष्ट	५ पैसे	दलमुसराय सोहनलाल हिरावठ चून् (राज०)
गणितगणितविक्रम गुजराती		
तेरापन्व एटले का ?		

हिन्दी	मूल्य	प्राप्ति स्थान
१६ बर्म एटले वुं ७	६२ पैसे	नेमीचन्द मीनचन्द बरिरो बम्बेमहल,
१७ परीगाठ बरिरो ! हर्दू	७५ पैसे	१३०, लेखनेमन स्ट्रीट बरिरो १ श्री बन हब० ती० समरा
१८ जीवन प्रकाश		नामा (पंजाब)

—लेखक की अप्रकाशित रचनाएँ—

संस्कृत	
१ देवगुरुधर्म-व्यावृत्तिका	१५ बोहा संशोध
२ प्रास्ताविक इन्डो-वस्तुधर्म	१६ व्याख्यानमणिमाला
३ एकादिक-शाकानुष्ठानधर्म	१७ व्याख्यानसममञ्जरी
४ श्री कालगणानन्दम्	१८ अतमशामारत रामायण चन्द्र चन्द्रिनी यादि बोल व्याख्य
५ श्रीकालकल्याणमन्त्रिणम्	१९ हाथेयपुननमाला
६ भाविनी	२० हाथेयद्विपद्यांगिका रानरघानी
७ ऐक्यम	२१ यतवाचनी
८ श्री मित्रगन्धानुष्ठानधर्म नृत्तिप्रतिप्रकल्पम्	२२ शबदायतक
गुजराती	२३ प्रोनेगिक वार्ड
९ गुरुमेवमपुन्याधि	२४ प्रास्ताविक वार्ड
१० गुरुभ्याह्वयामलोचि	२५ कथाप्रबन्ध
हिन्दी	२६ छ वड व्याख्यान
११ वैदिकविचारविमर्श	२७ व्याहृ छोटे व्याख्यान
१२ सगित्त-वैदिकविचार विमर्श	२८ साधवानी रो समुद्र पनायी
१३ लवण विधि	
१४ लल्लु बोलने का तरल तरीका	२९ पंजाब पचीसी

